प्रथम अध्याय

संगीत का प्राचीन काल एवं उसके प्रमुख ग्रंथों में संगीत संबंधी विषयों की सक्षिप्त चर्चा

(क) प्राचीन काल में संगीत

संगीत की उत्पत्ति, भारतीय संगीत का प्राचीन रूप, वैदिक युग में संगीत-आर्यो का मूल स्थान, भारत में आर्यो का आगमन काल, वैदिक साहित्य और संगीत (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद), पुराणों में संगीत- (हरिवंश पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण), रामायण काल में संगीत, महाभारत काल में संगीत तथा अन्य ग्रन्थों में संगीत।

(ख) प्राचीन काल के प्रमुख सांगीतिक ग्रंथों में संगीत संबंधी विषयों की संक्षिप्त चर्चा

नाट्यशास्त्र (भरत), दत्तिलम (दत्तिल), बृहद्देशी (मतंग), संगीतमकरंद (नारद)

मैंने तुम लोगों से 'लक्ष्यसंगीत' ग्रंथ की पद्धति को स्वीकार करने का बार-बार आग्रह किया है। इसका अर्थ नहीं है कि 'चतुर पंडित' (लक्ष्यसंगीतकार) कोई अलौकिक बुद्धि का व्यक्ति था। अतः उसका मत सर्वमान्य होना ही चाहिए।

पं. भातखण्डे (भातखण्डे संगीतशास्त्र भाग-1)

प्रथम अध्याय

संगीत का प्राचीन काल एवं उसके प्रमुख ग्रंथों में संगीत सम्बन्धी विषयों की संक्षिप्ति चर्चा

(क) प्राचीन काल में संगीत

भारतीय संगीत का इतिहास तो बहुत पुराना है, और इसका विकास भी अन्य कलाओं की तरह धीरे-धीरे हुआ है। परन्तु जहाँ हमें अन्य कलाओं के प्रत्येक युग की ऐतिहासिक सामग्री पूर्ण रूप में उपलब्ध है, वहाँ संगीत में ऐसी किसी रचना की उपलब्धि नहीं होती जो प्रागैतिहासिक कालीन संगीत के रूप और तत्पश्चात् होने वाले विकास-क्रम पर प्रकाश डाल सके। संगीत के लौकिक एवं शास्त्रीय पक्ष का विकास क्रमानुसार सांस्कृतिक प्रसंगों में कैसे हुआ, संस्कृति और समाज को कहाँ तक प्रभावित कर सका, विभिन्न समयों में संगीत के प्रति क्या दृष्टिकोण रहे, गायकों, वादकों को समाज में कैसा स्थान प्राप्त था, स्त्रियों का संगीत से कैसा संबंध था, संगीत के शास्त्रीय पक्ष में क्या-क्या परिवर्तन एवं विकास हुए इत्यादि विषय ऐसे हैं, जिन पर प्रमाण सहित प्रकाश डालना प्रमुख उद्देश्य है।

ज्यों-ज्यों मानव आध्यात्मिकता की ओर बढ़ा त्यों-त्यों संगीत कला की उन्नति हुई। परन्तु किसी भी युग में गाये बजाए जाने वाले गीतों अथवा धुनों और नृत्य का क्या स्वरूप था, यह केवल अनुमान से जाना जा सकता है। इसका कोई उल्लेख या रिकॉर्ड नहीं मिलता। इतना तो सत्य है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की एक लम्बी यात्रा में भारतीय संगीत कला ने अनेक उतार-चढ़ाव देखें हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो विविध राजघरानों और साम्राज्यों के उत्थान पतन का प्रभाव संगीत कला और उसके कलाकारों के जीवन पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। संगीत के विकास क्रम में वैदिक काल की पवित्रता रामायण और महाभारत काल की सात्विकता, हिन्दु राजाओं की स्थिरता, मुगलों की विलासिता और सन्तों की शक्ति परायणता, अंग्रजों की उपेक्षा और स्वतंत्रत युग के

संघर्ष और चेतना का प्रभाव हमें दिखायी पड़ता है। इतिहास साक्षी है कि कलाकारों ने युगों से जो कुछ पाया है, अपनी कला में पिरोकर समाज को दिया है। संगीत के घरानों को युगों ने पाला है और आज युग के परिवर्तन होने के साथ ही उसमें अनेक परिवर्तन होते दिखाई देने लगे हैं।

संगीत की उत्पत्ति

संगीत प्रकृति की एक सर्वाधिक सुंदर रचना है। संगीत की उत्पत्ति के विषय में हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता है। अनेक ग्रंथों में संगीत की उत्पत्ति से संबंधित अलग-अलग धारणाएं मिलती है। पुराविदों के अनुसार संगीत कला तथा शास्त्र का उद्भव स्वयम्भू परमेश्वर से हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्यकला के आदि स्रोत हैं तथा भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य कला की प्रवर्तिका है। 'दत्तिल के अनुसार गांधर्व के आदि प्रवचनकार स्वयम्भू ब्रह्मा है।'[1]

पंडित दामोदर के अनुसार संगीत की उत्पत्ति पशु-पक्षियों से हुई है। पंडित दामोदर ने सात स्वर की उत्पत्ति इस प्रकार बताई है- मोर से सा, चातक से रे, बकरा से ग, कौआ से म, कोयल से प, मेढ़क से ध, हाथी से नि स्वरों की उत्पत्ति हुई।[2]

'संगीत' शब्द के अन्तर्गत गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों कलाओं का समावेश है। ''भारतीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी जाती है। वेदों का मूल मन्त्र है- 'ॐ' (ओउम्)। शब्द में तीन अक्षर अ, उ, म सम्मिलित है जो क्रमशः ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता, विष्णु अर्थात् जगत पालक और महेश अर्थात् संहारक की शक्तियों के द्योतक है। मुख से उच्चरित शब्द ही संगीत में नाद का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार ओउम् को ही संगीत का जनक माना जाता है।''[3]

इस प्रकार संगीत की उत्पत्ति को लेकर भिन्न-भिन्न मत पाये जाते हैं। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ हैं। संगीत को इतिहास की सभ्यता

---

[1] भारतीय संगीत का इतिहास - शरच्चर श्रीधर परांजये - पृ. 7

[2] संगीत मैन्यूअल - डॉ. मृत्युन्जय शर्मा - पृ. 83

[3] संगीत शिक्षा - डॉ. चन्द्रमोहन सिंह - पृ. 1

और संस्कृति के विकास से अलग नहीं किया जा सकता। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ संगीत का जन्म होना संभव है और यह भी सच है कि, संगीत का स्तर उस काल की संस्कृति और सभ्यता के स्तर पर निर्भर करता है; क्योंकि संगीत के साधन भी सामान्य जीवन से ही प्राप्त होते है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है, वैसे-वैसे संगीत भी उत्कृष्ट रूप प्राप्त करता है।

भारतीय संगीत का प्राचीन रूप

भारतीय संगीत का प्राचीन रूप हम उस युग से आरम्भ करते हैं जब मानव अपनी आदिम अवस्था में था। समय के साथ-साथ मानव ने उन्नति की तथा विकास के पथ पर आगे बढ़ा। अन्य संस्कृतियों के संबंध में आने से संगीत भी बदलता गया। समय के प्रभाव से संगीत में भी परिवर्तन आते गए जिससे आज का संगीत सामने आया है।

भारत में संगीत कलाराधना प्रागैतिहासिक काल से आज तक चली आ रही है। इसका आँखों देखा प्रमाण प्राचीन शिल्पकृतियों से उपलब्ध होता है। उत्तर भारतीय संगीत का आधार धर्म रहा है। यहाँ संगीत की विशेष उन्नति व साधना हुई। परन्तु विदेशी आक्रमण भी उत्तरी भारत में ही अधिक हुए। दक्षिण भारत का संगीत मुख्य रूप से कर्णाटकी कहलाया। यह संगीत उत्तरी भारत से पृथक है। उत्तरी भारत पर विदेशियों के लगातार आक्रमण होते रहे जिसके कारण विदेशी संस्कृति का प्रभाव स्वाभाविक रूप से उत्तरी-संगीत पर पड़ा। दक्षिण भारत इन आक्रमणों से मुक्त रहा। यही कारण है कि आज भी दक्षिण भारतीय संगीत उतना ही पवित्र और मौलिक है जितना वैदिक काल में था।

भारतीय संगीत विश्व का श्रेष्ठतम् संगीत है। यह संगीत सर्वाधिक प्राचीन तथा अनोखा माना जाता है। लिखित रूप से हमें भारतीय संगीत की जानकारी कम ही प्राप्त होती है। जैसे सिंधु घाटी की सभ्यता आदि की जानकारी केवल वहाँ से प्राप्त हुई वस्तुओं के आधार पर मिलती है। फिर भी ऐसा देखने में आया है कि भारतीय संगीत का इतिहास विचित्रता पूर्ण रहा है।

वैदिक युग में संगीत

वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है।

भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सर्वप्रथम रूप इसी युग के वाङ्मय में उपलब्ध है। वैदिक वाङ्मय का गौरव इस बात में है कि संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक का सम्पूर्ण दिग्दर्शन करते हुए समकालीन अन्य प्राचीन संस्कृतियों के संबंध में अमूल्य सामग्री उससे उपलब्ध होती है। भारतीय इतिहास की दृष्टि से वैदक युग ही प्राचीनतम युग माना जाता है।

आर्यों का मूल स्थान

भारतीय संस्कृति को इतना अधिक प्रभावित करने वाला आर्य ही हमारे इतिहास की सबसे अधिक विवादपूर्ण समस्या बने हुए हैं। आर्यों का मूल स्थान कौन सा था? इस प्रश्न का सर्वसम्मत उत्तर विद्वान लोग आज तक नहीं खोज पाए हैं।

'ए.सी. दास के अनुसार- कुछ विद्वान पुराणों और अन्य धार्मिक ग्रंथों के आधार पर भारत को ही आर्यों का मूल निवास स्थान मानते हैं। आर्यों के किसी भी ग्रंथों में ऐसा कोई भी संकेत नहीं मिलता जिससे यह प्रकट हो कि आर्य कहीं भारत में बाहर से आए। आर्यों ने सदा भारत को ही अपनी जन्म भूमि समझा और उसे स्वर्ग माना है।[4]

भारत के प्रसिद्ध विद्वान बाल गंगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रुव प्रदेश को आर्यों का मूल स्थान माना है। उनके मतानुसार आज से लगभग दस हजार वर्ष पहले ध्रुव प्रदेश की जलवायु ऐसी सुहावनी थी कि वहाँ मनुष्य रह सकता था। बाद में वहाँ की जलवायु में असहनीय सर्दी बढ़ी। आर्य वहाँ से मध्य एशिया होते हुए भारत में आए और उत्तरी भारत में बस गए। यह बात तिलक की पुस्तक *'आर्कटिक होम इन दी वेदाज'* से भली भांति स्पष्ट है।[5]

सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार- 'आर्यों का मूल अभिजन (निवास-स्थान) हंगरी या डैन्यूब नदी की घाटी का क्षेत्र था। प्राचीन समय की विविध आर्य-भाषाओं में से एक 'सम' शब्द को चुन कर भाषा-विज्ञान के इन पंडितों ने इस

---

[4] प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत - विश्वभूषण कृष्ण - पृ. 55

[5] वही - पृ. 56

आर्य या 'वीराः' जाति की सभ्यता का चित्र खींचने का प्रयत्न किया; और इस जाति को जिन पशुओं, वनस्पतियों व वृक्षों का परिचय था, उनकी उत्पत्ति के लिए सबसे अधिक अनुकूल स्थान डैन्यूब नदी की घाटी ही हो सकती थी, इस मत की स्थापना की। इस मत के प्रधान प्रतिपादक 'श्री गाइल्स' थे। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित भारत का प्राचीन इतिहास (प्रथम भाग) में इसी मत को स्वीकार किया है।[6]

इस प्रकार आर्य जाति का मूल निवास स्थान कौन-सा था। इस संबंध में विद्वानों के जो प्रमुख मत हैं, उनका संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। यह निश्चित कर सकना बहुत कठिन है, कि इनमें से कौन सा मत सही व स्वीकार्य है। वस्तुतः, अभी तक कोई ऐसा प्रमाण व आधार नहीं मिला है, जिससे आर्य जाति के मूल निवास-स्थान का अंतिम रूप से निश्चित किया जा सके।

भारत में आर्यों का आगमन-काल

आर्यों के मूल स्थान की भांति भारत में उनके आगमन-काल की बात भी विवादग्रस्त है। आर्यों के काल निश्चित करने के लिए इतिहासकारों ने ऋग्वेद के रचना काल पर विचार किया है। इसकी रचना के बारे में विद्वानों में शताब्दियों का नहीं, सहस्त्रों वर्षों का अन्तर है। कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद का रचना काल 1000 ई. पू. और कुछ 2500 ई. पू. बताया है। बालगंगा धर तिलक ने यह समय 4500 ई. पू. और जेकोबी ने 6000 ई.पू. माना है। मैक्समूलर ने 1200 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक और विटरनिट्ज ने 2500 ई.पू. निश्चित किया है।[7]

'स्वतंत्र शर्मा' के अनुसार- भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग ही प्राचीनतम युग है और 700 ई.पू. से 800 ई.पू. तक यह युग माना जाता है।[8]

इस प्रकार वैदिक काल को निश्चित करने के लिए विभिन्न विचारकों ने विभिन्न तरह से विचार करने के पश्चात् अपना निष्कर्ष बताया है।

---

[6] प्राचीन भारत - सत्यकेतु विद्यालंकार - पृ. 66

[7] प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत - विश्वभूषण कृष्ण - पृ. 58

[8] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - शर्मा स्वतंत्र - पृ. 7

वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन पर होता है। आर्यों का संगीत इतना उत्कृष्ट था कि वे जहाँ भी गए, इन्होंने सबसे अधिक अपने संगीत की छाप छोड़ी। इस काल में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था। सुबह-शाम प्रत्येक परिवार में ईश्वर की अराधना होती थी। इस काल में जितना संगीत का विकास घरों में हुआ, उतना बाहर नहीं हुआ। संगीत प्रायः ब्राह्मणों में था। वे ही कला-साधना कर समाज के चरित्र को उच्च स्तर तक ले जाते थे। ब्राह्मण ही संगीत की शिक्षा सर्वसाधारण को दिया करते थे। गायन-वादन तथा नृत्य तीनों का विकास हमें वैदिक युग में ही मिलता है। इस काल में वीणा वादन भी प्रचलित था। स्त्रियाँ वीणा-वादन करती थी। संगीत का विशेष रूप से आयोजन होता था और नर्तकियाँ उनमें खुलकर भाग लेती थी। समाज में नृत्य का प्रतिष्ठित स्थान था। पुरुष भी नृत्यों में रूचि रखते थे। नृत्य कला काफी विकसित हो चुकी थी।

वैदिक साहित्य और संगीत

आर्यों के सभी साहित्य को ही वैदिक साहित्य कहा जाता है। वैदिक साहित्य में केवल चारों वेद ही शामिल नहीं है, उसमें आर्यों के महत्वपूर्ण ग्रंथ ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक, वेदांग और उपवेद आदि सभी धार्मिक ग्रंथ सम्मिलित हैं। संसार की विभिन्न प्राचीन सभ्यताओं के निर्माताओं की तरह आर्यों ने हमारे लिए अपने साहित्य का बहुत सा भंडार छोड़ा है। जिससे हमें उनकी सभ्यता और संस्कृति के विषय में पूरी जानकारी मिल सके। वैदिक साहित्य पर आज भी हर एक भारतीय को गर्व है। इस साहित्य में उच्च भावनाएँ, नैतिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक विवेचन, ऊँची कल्पना, अध्यात्मिक चिंतन, सांगीतिक प्रयोग और सुन्दर काव्य कला आदि सभी गुण भरे हुए हैं।

वेद के विस्तृत स्वरूप के कारण इसे चार भागों में विभक्त किया गया है-

ऋग्वेद

यह सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है तथा इसमें ऋचाओं का पाठ किया जाता है। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र तथा गीति शब्दों का प्रयोग मिलता है। गेय ऋचाायें 'स्रोत्र' कहलाती थी। स्रोत्र का गान उद्गाता ऋत्विक करता था। स्रोत्रों का आवृत्ति पूर्वक पाठ 'स्तोम' कहलाता था, जो तीन ऋचाओं के

ऊपर आधारित होता था। डॉ. रमावल्लभ मिश्र के अनुसार- जिस प्रकार आज स्थाई और अन्तरे को गायक स्वर तथा लय भेद करके बार-बार गाते हैं सम्भवत: उसी प्रकार स्तोमगान होता था। गाथा एक विशिष्ट प्रकार का गीत था, जिसका गायन धार्मिक और सामाजिक समारोहों के अवसर पर होता था। इसके गायक गाथिन कहलाते थे।[9] गाथाओं का गायन ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों के ही द्वारा यज्ञों के पश्चात् किया जाता था।

डॉ. नूपुर राय चौधरी के लेख के अनुसार ऋचायें दो प्रकार की थी- 'शास्त्र' व 'स्रोत्र' किन्तु प्रमुखता 'स्रोत्र' को दी जाती थी। इन स्रोत्रों का गायन जब प्रकारान्तर व विविध स्वरों के साथ किया जाता था तब यह 'स्तोम्' नाम से पुकारा जाता था। स्तोम् वैदिक संगीत का महत्वपूर्ण अंग रहा है। यह एक विशिष्ट प्रणाली है जिसमें आधुनिक संगीत की गान शैली की झलक मिलती है।[10]

ऋग्वेद काल में सातों स्वर अपने अस्तित्व में आ चुके थे, ऐसा मालूम पड़ता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में यह मन्त्र आता है-

तदित्सधस्थमभि चारू दीधय गावो यच्छासन्वहृतुं न धेनवः।

माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूव्याभिवाणस्य सप्तधातुरिज्जनः॥ 10-32-4 पृ. 2134

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार- इसमें *''वाणस्य सप्तधातुः''* पर सायण-भाष्य इस प्रकार है- *''वाणस्य वाद्यस्य सप्तधातुर्निषादादिसप्तस्वरोपेतो''*। सायण ने वाण का अर्थ वाद्य लिया है और ''सप्तधातुः'' का अर्थ निषादादि सात स्वर माना है।[11]

ऋग्वेद काल में गायन, वादन के साथ-साथ नृत्य कला का एक विकसित रूप का परिचय मिलता है। नृत्य के कार्यक्रम खुले प्रांगण में तथा एकत्रित दर्शकों के सम्मुख होते थे, जिसमें नर व नारी दोनों भाग लेते थे।[12]

वैदिक काल में गर्गर, पिंगा और गोधा आदि वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं। ये

---

[9] छायानट - डॉ. रमाबल्लभ मिश्र के लेख से - पृ. 8 (1982)

[10] बागेश्वरी - डॉ. नूपुर राय चौधरी - पृ. 13 (2005)

[11] भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह - पृ. 26

[12] बागेश्वरी - डॉ. नूपुर राय चौधरी के लेख से - पृ. 14 (2005)

तीनों रण-वाद्य थे। इसी काल में दुदुंभी तथा आदम्बर युद्ध में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख वाद्य थे। इन वाद्यों के द्वारा सैनिकों का उत्साहवद्र्धन होता था, ताकि वे अपने शत्रुओं को परास्त कर सकें। भेरी तथा दुंदुभि-जैसे वाद्य शासकीय घोषणा को प्रसारित करने तथा युद्ध की सूचना देने के लिए बजाए जाते थे।[13]

ऋग्वेद के छठे मंडल में दुंदुभि के लिए निम्नश्लोक है-

आमूरज प्रत्यावर्तयमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति।

समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥ 6-47.31

अर्थात्- हे राजन् आदि जनो! तुम लोग दुंदुभि आदि वाद्यों से भूषित, हर्ष व पुष्टि से युक्त सेनाओं को अच्छे प्रकार रखकर, इनसे दूरस्थ भी शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर प्रजाओं का धर्मयुक्त व्यवहार से पालन करो।[14]

विजय कुमार गोयल ने ऋग्वैदिक कालीन संगीत के बारे में इस प्रकार चर्चा की है- ऋग्वेद काल में संगीत पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो चुका था। शांति एवं युद्ध के समय 'दुंदुभि' वाद्य का प्रयोग होता था। वाद्य यंत्रों में 'कर्करी' का भी प्रयोग किया जाता था। कर्करी, बांसुरी की तरह का एक वाद्य यन्त्र था। वाद्य यन्त्रों में 'अघाटी' का संदर्भ मिलता है। यहाँ अघाटी का अर्थ 'वीणा' से लिया गया है। मैक्डॉनल एवं कीथ के अनुसार इसका प्रयोग संयुक्त रूप से गायन के समय होता था। सायण भी इसका अर्थ वीणा ही लेते हैं। मैक्डॉनल का तर्क भी ठीक ही है क्योंकि सोमाभिषव के साथ सात स्त्रियों का संयुक्त गायन का संदर्भ प्राप्त होता है। 'गाता पति' को गायन का देवता कहा गया है। दानस्तुति का विशेष रूप से राजाओं अथवा देवताओं के लिए प्रयुक्त हुआ है।[15]

'भारतीय संस्कृति' ग्रंथ में भी अन्य विद्वानों की भांति ऋग्वैदिक कालीन संगीत के बारे में जानकारी प्राप्त होता है- आर्यों का जीवन सुख और आनन्द से भरपूर था। वे आमोद प्रिय थे। उनके मनोरंजन के प्रमुख साधन अश्व-दौड़ तथा

---

[13] संगीत - डॉ. मनोरमा शर्मा के लेख से - पृ. 3 (जुलाई - 2003)

[14] वही - पृ. 3 (जुलाई - 2003)

[15] ऋग्वेद कालीन समाज और संस्कृति - विजय कुमार शुक्ल - पृ. 93

रथ दौड़ थे। जुआ खेलना भी आर्यों का प्रिय मनोरंजन था। ऋग्वेद का प्रसिद्ध अक्षर सूक्त (10/34...) द्यूत के आकर्षण और दुष्परिणामों का बहुत सुंदर तथा मनोरंजक वर्णन करता है। उस समय कंठ संगीत का भी प्रचलन था। सोमरस निकालते समय ब्राह्मण उच्च स्वर में गीत गाते थे। दुंदुभि, पणव, शृंग तथा वीणा आदि वाद्य बजाये जाते थे। स्त्रियाँ तो नृत्य करती ही थीं, सम्भवतः पुरुष भी नृत्य किया करते थे। कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद में पाये जाने वाले संवाद सूक्तों को नाट्य का प्रारंभिक रूप माना है। इन सबसे स्पष्ट है कि तत्कालीन युग में नृत्य, संगीत, क्रीड़ा आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।[16]

यजुर्वेद

यजुर्वेद काल में यज्ञों का महत्वपूर्ण स्थान था। एक दिन से लेकर अनेक वर्षों तक प्रवर्तित होने वाले यागों का विवरण यजुः संहिता में उपलब्ध है। इन यज्ञों में सामगान का अनिवार्य स्थान रहा है, यहाँ तक कि बिना सामगान के यज्ञों की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। सामगान की अनिवार्यता तथा विस्तार के साथ सामगायकों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक था। उसी के अनुकूल एक ही साम के विभिन्न खण्डों का गायन उद्गाता तथा उसके सहयोग उपगाताओं के द्वारा किया जाता था। ऋक् मंत्रों की अपेक्षा सामगान का सोमयागों में प्रमुख स्थान था।

'यजुर्वेद' उन मन्त्रों का संकलन है जिनका गायन यज्ञादि के अवसर पर कर्म काण्ड के लिए होता था। चार गायक होते थे, जिनको क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा कहते थे। यज्ञ के कार्यों का संचालन अध्वर्यु नामक ऋत्विज के द्वारा किया जाता था।[17] यह यजन-कर्म जिन मन्त्रों के द्वारा किया जाता था, उन्हीं का संकलन यजुः संहिता में हुआ है-

ऋग्भिः यजुभिः सामभिर्यदेन ऋग्भि शंसन्ति

यजुभिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति[18]

---

[16] भारतीय संस्कृति - डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल - पृ. 140

[17] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - स्वतंत्र शर्मा - पृ. 8

[18] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे - पृ. 26

सोम यागों में ऋक्, यजु, तथा साम तीनों प्रकार के मन्त्रों का अनिवार्य स्थान हैं। यजुर्वेद में होम-यज्ञ के मन्त्र-तन्त्र एवं विभिन्न अनुष्ठानों का वर्णन किया गया है।[19]

भूषण गिरी गोस्वामी के अनुसार यजुर्वेद की सबसे प्रमुख विशेषता है इसका 'गद्यात्मक स्वरूप'। आर्यकालीन संस्कृति में आर्यों द्वारा सम्पादित होने वाले यज्ञों में 'अध्वर्यु' की सहायता के लिए जो गद्यात्मक वैदिक प्रार्थनाएँ और निवेदन देवों के लिए, ऋक् तथा साम से भिन्न, गद्यात्मक मन्त्रों का संयोजन 'यजुष' कहा जाता था अर्थात् यजुर्वेद 'यजुषः' विषय-वस्तु यज्ञ और हवनों के नियम और विधान है। यह ग्रंथ आर्यों के यज्ञीय कर्मकाण्डों में 'अध्वर्यु' की सहायता के लिए निर्मित किया गया है। इस ग्रंथ में यज्ञों के प्रकार जैसे सोमयज्ञ, गृहयज्ञ, अग्निहोत्र यज्ञ, पूर्णिमा यज्ञ, वाजपेययज्ञ, राजसूय यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ इत्यादि एवं उनके पूर्ण करने की विधियाँ दी गई हैं।[20]

यजुर्वेद की शुक्ल और कृष्ण दोनों शाखाओं में साम गान की प्रशंसा की गई है। यजुर्वेद में रथन्तर, वैराज, वैश्वानर, वामदेव्य, शाक्वर, रैवत, अभीवर्त इन सात प्रकार के सामों का उल्लेख हुआ है। इनमें से कई साम किसी ऋतु विशेष में ही गाये जाते थे। जैसे- रथन्तर साम वसन्त ऋतु, वैराज साम वर्षा ऋतु में ही गेय थे। इन सामों का ऋतुओं से हमारे वर्तमान ऋतु विशेष में गाये जाने वाले रागों-वसन्त, मल्हार आदि की ओर संकेत करता है।[21]

यजुर्वेद काल में अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्यों के बारे में बताया है जिनमें प्रमुख वाद्य है- वीणा, वाण, तूणव, दुंदुभि, भूमि दुंदुभि, शंख तथा तलव आदि। 'इस काल में गायन वादन एवं नृत्य के समय हाथ से ताल देने की प्रणाली थी। युजुर्वेद काल की महिलाएं भी लय शास्त्र में प्रवीण थी।'[22] निम्न कूल की महिलाओं को लोक नृत्य आदि समारोहों पर आमंत्रित किया जाता था। सिर पर

---

[19] विश्व संगीत का इतिहास - अमल कुमार दाश - पृ. 11

[20] वैदिक कालीन सभ्यता एवं संस्कृति - भूषण गिरी गोस्वामी - पृ. 249

[21] छायानत - डॉ. रामावल्लभ मिश्र के लेख से - पृ. 8 (1982 अंक - 20)

[22] उत्तर भारतीय संगीत - गुरमीत सिंह मनकान - पृ. 12

कलश लेकर एक से अधिक नर्तकियाँ वर्तुलाकर नृत्य करती थीं और मुँह से गीत के चरणों को गाती थी।[23]

अथर्ववेद

चतुर्विधा वेदों में अथर्ववेद का भी अपना विशिष्ट स्थान है। इस वेद में प्रयोगात्मक मन्त्र तथा विधि-विधानों का संकलन है। इस वेद में भी सामगान के महत्व का प्रचुर उल्लेख मिलता है। इस वेद का अपना विषय विभिन्न प्रयोगात्मक मन्त्र जैसे- मारण, उच्चटन, वशीकरण आदि है। इस वेद को 20 कांडों में बांटा गया है।

वैदिक कालीन इतिहास के लेखन में ऋग्वेद एवं अथर्ववेद की भूमिका अत्यन्त उच्च श्रेणी की है। जहाँ ऋग्वेद आर्यों की प्रारम्भिक जीवनशैली का दर्शन कराता है वहीं अथर्ववेद उनके विकासशील जीवन-दर्शन की झाँकी प्रस्तुत करता है। धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दर्शन की दृष्टि से भी ऋग्वेद एवं अथर्ववेद का बड़ा महत्त्व है।

अथर्ववेद में धार्मिक अनुष्ठानादि में साम गान का प्रयोग तो होता ही था, परन्तु लौकिक विभिन्न विवाहादि अवसरों पर मंगल गीत इत्यादि गाने की प्रथा प्रचलित थी।

डॉ. रमा बल्लभ मिश्र के अनुसार- 'अथर्ववेद में गाथा तथा नाराशंसी के अतिरिक्त रैभी-लौकिक गीत प्रकार का भी उल्लेख है। विवाह आदि प्रसंगों पर इनका गान होता था। आमोद-प्रमोद, यात्राओं तथा कपड़ा बुनने जैसे व्यवसायिक अवसरों पर भी गायन का वर्णन है। इन बुनकर नारियों की गीत लय-युक्त थी और वर्तुलाकार नृत्यांगनाओं का स्मरण कराती थी। गांधर्वों की पत्नियों, अप्सराओं का नृत्य-गान में कुशल और संलग्न होना आवश्यक था।'[24]

अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि 'दुंदुभि' का निर्माण काष्ठय से किया जाता था तथा उसका मुख परिपक्व चर्म से बनता था। इसको चारों ओर से चर्म की बद्धियों से बद्ध किया जाता था। बद्धियों को मुलायम रखने के लिए तेल का लेपन किया जाता था।[25]

---

[23] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - स्वतंत्र शर्मा - पृ. 9

[24] छायानट - डॉ. रामावल्लभ मिश्र के लेख से - पृ. 10 (1982 अंक 20)

[25] उत्तर भारतीय संगीत - गुरमीत सिंह मनकान - पृ. 12

डॉ. मनोरमा शर्मा दुंदुभि के बारे में इस प्रकार विचार व्यक्त किया है- अथर्ववेद में दुंदुभि का गौरव गान किया गया है। दुंदुभि को हिंदुओं द्वारा पूजित वाद्य के रूप में वर्णित किया गया है। युद्ध के दौरान यदि किसी सेना की दुंदुभि का हरण कर लिया जाता था, तो उस सेना की हार मानी जाती थी।[26]

सामवेद

प्राचीन काल से संगीत भारतीय संस्कृति, जनजीवन का अभिन्न अंग रहा है। सामवेद का प्राचीन संगीत की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। सामवेद को संगीत का मूल कहा जाता है। साम का गान ऋग्वेद की ऋचाओं के आश्रय से किया जाता रहा है। साम संहिता में ऋक् के चुने हुए मन्त्रों का संकलन है। सामागान का प्रधान अंग स्वर है। सामवेद एक ऐसा वेद है जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते गाये जाते थे। ऋचाओं के ही संगीतमय परायण से साम गान का प्रथम विकास ऋषियों द्वारा किया गया।

सामवदे के दो प्रधान भाग हैं- (1) आर्चिक तथा (2) गान। साम संहिता में जो संकलित ऋचाएं हैं उन्हें आर्चिक कहा गया है। गान संहिता में केवल गीत के बोल थे। गान ग्रंथ साम के स्वरमय स्वर के द्योतक है। आर्थिक ग्रंथों की तुलना आधुनिक परिभाषा में संगीत के ऐसे गीति ग्रंथों से की जा सकती है, जिनमें केवल स्वर-विरहित चीजों का संकलन होता है। 'जैमिनीय सूत्र गीति के लिए साम संज्ञा है- *'गीतुषु सामाख्या।'* अर्थात् जो मन्त्र गाये जाते हैं वही साम है।[27] गान ग्रंथों की तुलना स्वरलिपि सहित चीजों के संकलन - ग्रंथों से की जानी चाहिए।

सामवेद के प्रथम भाग अर्थात् आर्थिक संहिता को दो भागों में बांटा गया है- (1) पूर्वार्चिक तथा (2) उत्तरार्चिक।

---

[26] संगीत - डॉ. मनोरमा शर्मा के लेख से - पृ. 4 (जुलाई - 2003)

[27] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये - पृ. 54

(1) **पूर्वार्चिक**- पूर्वार्चिक में 6 अध्याय या प्रपाठक हैं। इनमें से प्रथम पांच अग्नि, इन्द्र, पवमान आदि देवताओं की स्तुति की गई है।

(2) **उत्तरार्चिक**- इसमें 9 प्रपाठक है तथा मंत्र संख्या कुल 1295 है। सामवेद की सम्पूर्ण 1,875 ऋचाओं में से केवल 99 ऐसी है जो ऋग्वेद में नहीं मिलती।[28]

सामवेद के गान ग्रंथ को 4 भागों में विभक्त किया गया है-

ग्राम गेयगान- सम्भवतः ग्रामवासी गृहस्थों तथा अरण्यकगान वन में रहने वाले ऋषियों द्वारा गाया जाता था। इन्हीं दोनों प्रकार के गानों से ऊह्गान और ऊह्यगान की पद्धतियाँ प्रस्फुटित हुईं।

सामगान की अनेक परम्परागत या शाखाएं थी। इनमें केवल तीन शाखाओं के नाम अधुना उपलब्ध है। ये हैं- 'कौथुमिय शाखा, राणायणीय शाखा तथा जैमिनी सूत्र।[29]

वैदिक स्वर- 'पतञ्जलि के अनुसार 'स्वर' वे हैं, जो स्वयं विराजित होते हैं- 'स्वयं राजन्ते इति स्वराः।[30]

उदात्त , अनुदात्त और स्वरित ये तीन प्रधान स्वर संज्ञाएं 'नारदीय शिक्षा' में उपलब्ध है। इसके अनुसार (उदात्त) उच्च, (अनुदात्त) नीच और (स्वरित) बीच का स्वर ये तीन स्वर प्रधान्य है।[31]

महर्षि पाणिनी के अनुसार- *'उच्चैरूदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहार स्वरितः।'* इसका भी अभिप्राय उदात्त का उच्च, अनुदात्त का नीच और स्वरित का समाहार अर्थात् दोनों का जोड़ यही भाव प्रतीत होता है।[32]

---

[28] छायानट - डॉ. रामावल्लभ मिश्र के लेख से - पृ. 9 (1982 अंक 20)

[29] भारतीय संगीत सरिता - डॉ. रमा सर्राफ - पृ. 7

[30] भारतीय संगीत एक इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये - पृ. 75

[31] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन - पृ. 32

[32] वही - पृ. 32

आर्थिक, गाथिक, सामिक, स्वरान्तर

नारद के अनुसार–

एक स्वरप्रयोगो (मि?हि) आर्थिकः सोऽमिधीयते।

गडिको (गाथिको) द्विस्वरोज्ञेयस्त्रिस्वरश्चैव सामिकः॥

चतुःस्वर प्रयोगोहि कथितस्तु स्वरान्तरः॥[33]

अर्थात् सात प्रकार के स्वर योग हैं– एक स्वर प्रयोग को आर्चिक, द्विस्वर प्रयोग को गाथिक, त्रिस्वर प्रयोग को सामिक और चार स्वर प्रयोग को स्वरान्तर कहते हैं। औड़व–पाँचस्वर प्रयोग, षाड्व–छः स्वर प्रयोग और सात स्वर प्रयोग को सम्पूर्ण कहा जाता है।

सामगान में सप्त–स्वरों का प्रयोग होता था। यह सम्भव दिखता है कि सप्त स्वरों का विकास धीरे–धीरे हुआ। इन स्वरों के नाम थे– प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट, अतिस्वार्य। नारदीय शिक्षा में इनकी तुलना गांधर्व के सप्त–स्वरों से की गई है और इनके अलग तुलनात्मक नाम से भी बताये गए हैं।[34]

सामगान की भक्ति का स्वरूप

पंचविध के अतिरिक्त सप्तविध साम का भी उल्लेख मिलता है। साम का आरम्भ 'ओम' से किया जाता था। उपगायकों को सामगान के अंत तक निरंतर इसी स्वर का गान मंद्र स्वर से करने का विधान था। सामगान का अन्त भी 'ओम्' से किया जाता था। सामगान को उपगाताओं की संगत से बल प्राप्त होता था। आधुनिक काल में तानपुरा आदि वाद्य जिस प्रकार आधार षड्ज की निरंतर अनुभूति कराते हैं, उसी प्रकार मूल भूत स्वर को उपगाता अपने स्वर मय संगत से साम गायकों को उनके आधार स्वर का ज्ञान कराते थे तथा साम के विभागों को खण्डित नहीं होने देते थे। उपगाताओं का कार्य पांच या सात व्यक्तियों को उपगान से जोड़ना होता था। साम की पांच भक्तियाँ इस प्रकार है–

---

[33] वही – पृ. 45

[34] छायानट – डॉ. रामावल्लभ मिश्र के लेख से – पृ. 9 (1982 अंक–20)

प्रस्ताव- यह पंचविध साम का प्रथम भाग है जिसमें प्रस्ताव रखा जाता था। अर्थात् ऋचा का प्रथम पद गाया जाता था। इसका गान 'प्रस्तोता' नामक ऋत्विज करता था।

उद्गीथ- इस विभाग को साम का प्रमुख ऋत्विज उद्गाता गाता था। साम का यह विभाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें ऋचा की प्रथम पंक्ति की स्वरावली को आधार मानकर विभिन्न ढंग से गाते थे। सहायक स्वरावलियों का प्रयोग भी इसमें होता था।

प्रतिहार- इसका अर्थ है दो विभागों को जोड़ने वाला। इसका गान प्रतिहर्ता नामक ऋत्विज द्वारा किया जाता था।

उपद्रव- इस भाग को उद्गाता तथा प्रतिहर्ता मिलकर गाते थे। इसमें मूल मंत्र की सभी पंक्तियाँ समाहित होती थी।

निधन- इस भाग को उद्गाता, प्रस्तोता तथा प्रतिहर्ता तीनों मिलकर गाते थे तथा इसी भाग में पंचविध अथवा सप्त विध साम का समापन होता था।

सप्तविध साम- इसके अन्तर्गत पंचविध में ही दो और भाग जोड़ दिए गए- 'प्रणव तथा हिंकार'।

प्रणव- इस भाग को उद्गाता द्वारा प्रतिहार के उपरान्त गाया जाता था।

हिंकार- इस भाग को निधन से पूर्व प्रस्तोता तथा प्रतिहर्ता द्वारा मिलकर गाया जाता था।

उपरोक्त वर्णन से ऐसा मालूम पड़ता है कि सामगान में मंत्राक्षरों के ऊपर संकेत देकर उच्चारण की गति अथवा लय का निर्देश भी किया जाता होगा। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि, उस गान में रागदारी और लयकारी का विशेष ध्यान रखा जाता होगा।

स्तोभाक्षर- साम गान करते समय कुछ ऐसे वर्णों या पदों का प्रयोग किया जाता था, जो मूल साम योनि ऋक् में नहीं होते थे। साम गान में इन ऋक्यतिरिक्त प्रयुक्त होने वाले वर्णों या पदों को 'स्तोभ' कहा जाता है। स्तोभ पद सार्थक या

निरर्थक दोनों प्रकार के होते हैं। विश्व की सभी संगीत प्रणालियों के सूक्ष्म निरीक्षण से यह बात सिद्ध होती है कि स्तोभ वस्तुतः आलाप प्रकार है तथा संगीत की सभी प्रणालियों में हो, होवा, हाऊ, ओ आदि इसी रूप में पाए जाते हैं। ये स्तोभ परम्परागत निधि हैं, जिनके प्रयोग से गायक को विभिन्न स्वर-समूहों के माध्यम से गान को प्रभावशाली बनाने में सहायता मिलती है।[35]

इस काल में वीणा वाद्य का विशेष महत्व था। वीणा के कई नाम प्रचलित थे; जैसे- महती, पिनाकी, कात्यायनी, रावणी, मत्त, घोषवती, कछप्पी, गात्र वीणा आदि। वीणा की संगति गायन के साथ की जाती थी।

इस प्रकार वैदिक काल में भक्ति और संगीत का घनिष्ठ संबंध रहा है। इस युग में पग-पग पर भक्ति और संगीत का समन्वय दिखाई देता है। इस युग में संगीत की सबसे बड़ी विशेषता पवित्रता और अध्यात्मिकता ही रही है। आर्यों ने इन सभी रूपों में अपने जीवन के उत्थान के लिए उस परम सत्ता की उपासना को सदैव अपने दृष्टिकोण में रखा।

पुराणों में संगीत

प्राचीन संस्कृत वाङमय के इतिहास में पुराण साहित्य का विशिष्ट स्थान है। विद्वानों के अनुसार पुराणों को संग्रह ग्रंथ कहा गया है जिनमें समय-समय पर संशोधन परिवर्तन एवं संकलन होता रहा है। प्राचीन समय का ये एक प्रकार से विश्व कोश है जिसमें जीवन के सभी अंगों पर प्रकाश डाला गया है। प्राचीन काल में जिन आख्यानों का प्रचलन मौखिक रूप से प्रवर्तित रहा, उन्हीं का संकलन पुराणों में किया जाता रहा है। इसी प्रकार पुराण-संग्रह ग्रंथों के रूप में जाना गया।

पुराणों में प्रमुख रूप से सृष्टि का आरम्भ, प्रलय और पुनः सृजन, राजा, ऋषि, देवता, दैत्य आदि के वंशों का वर्णन, मनु का काल और राजाओं के वंशों का इतिहास शामिल है। इसके अतिरिक्त इनमें दान, व्रत, तीर्थ, श्राद्ध इत्यादि की व्याख्या है। कहीं-कहीं साहित्य और संगीत का उल्लेख भी मिलता है। इन सब विषयों का संकलन पुराणों में होने के कारण उन्हें संग्रह-ग्रंथ कहा गया है। वैसे तो

[35] संगीत-वैदिक सामगान - डॉ. पंकजमाला शर्मा के लेख से - पृ. 6 (अप्रैल - 2004)

ग्रंथों में 18 प्रकार के मुख्य पुराण व महापुराणों का वर्णन मिलता है-

(1) मार्कण्डेयपुराण (2) मतस्यपुराण (3) भागवतपुराण (4) भविष्यपुराण (5) ब्रह्मपुराण (6) ब्रह्मवैवर्तपुराण (7) ब्राह्मणपुराण (8) विष्णु पुराण (9) वायुपुराण (10) वराहपुराण (11) वामनपुराण (12) नारदीय पुराण (13) लिंग पुराण (14) पद्मपुराण (15) अग्निपुराण (16) कूर्मपुराण (17) स्कन्दपुराण (18) गरूड़ पुराण।

संगीत के इतिहास की दृष्टि से जिन पुराणों में संगीत विषयक विशेष सामग्री उपलब्ध होती है वे है- विष्णुधर्मोत्तर पुराण, मार्कण्डेय पुराण, वायुपुराण, हरिवंश पुराण।

हरिवंश पुराण

हरिवंश में वैदिक तथा लौकिक संगीत की दो धाराएं समान रूप से प्रचलित थी। वैदिक के अन्तर्गत सामगान का अन्तर्भाव है तथा लौकिक के अन्तर्गत गांधर्व का समावेश होता है। गान का विवरण देते हुए हरिवंशकार ने इस विभेद को स्पष्ट किया है-

गानप्रभाषं संचक्रे गन्धर्वाणामशेषतः।

अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्मप्रभाषितम (भविष्यपर्व, 20,9)[36]

अर्थात् सृष्टि के निर्माण पर गान की द्विविध परम्परा का प्रवर्तन हुआ एक गंधर्वो के लिए तथा दूसरी यज्ञादि करने वाले विप्रवर्ग के लिए।

हरिवंश के श्रीकृष्ण केवल सफल वंशीवादक ही नहीं, वरन् एक विशिष्ट गीत-शैली तथा नृत्य-प्रणाली के प्रवर्त्तक हैं। स्त्री-पुरुषों का संयुक्त तथा मण्डलाकार नृत्य जो कि 'रास' के नाम से विख्यात है और आज भी लोक नृत्य की परम्परा में प्रचलित है।

'रास' नृत्य के बारे में रामनारायण अग्रवाल जी का विचार इस प्रकार है-

[36] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये - पृ. 202

आभीरों में नृत्य की यह परम्परा ही रास की पृष्ठभूमि बनी। इसी परम्परा का यह प्रभाव था कि भगवान् कृष्ण की मुरली के आह्वान पर समस्त ब्रजांगनाएँ निस्संकोच यमुना-पुलिन पर चली आई और बिना किसी पूर्वाभ्यास के केवल कृष्ण के निर्देशन मात्र पर वे रास-नृत्य में योग दे सकी। शरद्-निशा में भगवान् कृष्ण ने आभीरों की लोक-नृत्य परम्परा को अपनी प्रतिभा और कला से सँवार और निखारकर ही एक स्तर प्रदान किया, जो 'रास' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वे उसके संस्थापक माने गए।[37]

हरिवंश में 'आसारित' के साथ छालिक्य गांधर्व नामक एक और नृत्य का विवरण द्वारकावासियों की जलक्रीड़ा-प्रसंग में है। वहाँ कृष्ण के आदेश से छालिक्य गान होता है। समुद्र तट पर उपस्थित नारद, कृष्ण, अर्जुन तथा अप्सराएँ विविध वाद्यों का सामूहिक वादन करते हैं और अभिनय में चतुर रंभा, उर्वशी, हेमा, मिश्र केशी, तिलोत्तमा और मेनका-गीत, अभिनय एवं नृत्य प्रस्तुत करती है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम अकेली रंभा का अभिनय होता है, तदुपरान्त सामूहिक नर्त्तन है।[38]

हरिवंश में 'हल्लीसक' का विधान दिया हुआ है। यह नृत्य दो-दो गोपिकाओं के द्वारा मंडल बनाकर कृष्ण चरित्र-गान के साथ होता है और कृष्ण गोपिकाओं के मंडल के बीच शोभित होते हैं-

तास्तु पंतीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरम।

गायत्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यको।।[39]

डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे के अनुसार- तत्कालीन ब्रज में 'छालिक्य' नामक लोक-गीत का विशेष प्रचार था। स्वयं भगवान् कृष्ण इसके प्रचारक थे। इसका सरस गायन महिलाओं द्वारा कैसे किया जाता था, इसका वर्णन 'हरिवंश' के निम्न श्लोक में हैं-

---

[37] संगीत (रास का उद्गम-स्रोत) - रामनारायण अग्रवाल के लेख से - पृ. 6-7 (1971, नंबर)

[38] संगीत (हरिवंश और कत्थक नृत्य की उत्पत्ति) - डॉ. परमेश्वर सोलंकी - पृ. 33/34 (अगस्त 1990)

[39] वही, पृ. 34

ततस्तु देवगंधार छालिक्यं श्रवणामृतम्।

भैमस्त्रियः प्रजगिरे मर्नः श्रोत्रसुखावहम्।। 93-23।।[40]

भावार्थ यह है कि 'देवगंधार' नामक छालिक्य का गान स्त्रियाँ श्रुतिमधुर रूप से कर रही थी। गांधार ग्राम में गाया जाने वाला आसारित गीत गंगावतरण पर आधारित था तथा इसका लय-ताल युक्त गान असुरों के लिए संतोषजनक था।

हरिवंश पुराण में कुछ वाद्यों के नाम इस प्रकार मिलते हैं- कालनेमि और विष्णु के युद्ध में नारद के हाथ में वल्लकी वीणा थी। उस वीणा को बजाते-बजाते नारद ब्रह्मदेव के पास गए थे। वल्लकी वीणा से सात स्वर मूर्च्छना द्वारा निकलते थे। छालिक्य-क्रीड़ा वर्णन में यादव जल क्रीड़ा करने समुद्र किनारे गए थे। उनके पास नाना प्रकार के वाद्य थे। जल दर्दुर नामक वाद्य था। यह वाद्य मेढ़क के आकार का होगा। उसमें नारद वीणा बजाते थे। ऋल्लीस और झल्लीसक नामक वाद्य बजाए जाते थे। ब्रज पुर के राज ब्रजनाभ के आगे नाटक दिखाने पर प्रद्युम्न ने नान्दी नामक वाद्य बजाया था। यह वाद्य बैल के मुख के आकार का प्रतीत होता था।[41]

हरिवंश काल में सामगान यज्ञादि के अवसर पर किया जाता था। यज्ञ के बाद गाथादि का गान होता था। गांधर्व के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं का समावेश माना गया है। गंधर्व और किन्नर गांधर्व के दिव्य कलाकारों की कोटि में जाने जाते थे। गांधर्व के शास्त्रीय पक्ष में स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, ग्रामराग आदि का अन्तर्भाव था। षड्ज और मध्यम ग्राम के साथ ग्राम राग का प्रचलन इस युग की विशेषता थी।[42]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

इसके तीन खण्ड हैं प्रथम खंड में ज्योतिष, वंश, वंशावली, भूगोल इत्यादि

---

[40] संगीत - (वेदतथा पुराणों में ब्रज संगीतकी परम्परा) डॉ. शरच्चन्द्र परांजये - पृ. 39-40 (1963-अगस्त)

[41] संगीत - (भारतीय संगीत के वाद्य) रसिकलाल माणिकलाल पंड्या - पृ. 24 (जनवरी-2004)

[42] भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप- डॉ. राजीव वर्मा-डॉ. नीलम पारीख - पृ. 17

का वर्णन है। द्वितीय खण्ड में धर्म और राजनीति का बखान है। इसके अतिरिक्त तृतीय खण्ड में संस्कृत, व्याकरण, छन्द, नाट्य, काव्य, प्रतिमा निर्माण, चित्रकारी इत्यादि के साथ-साथ गायन, वादन और नृत्य आदि संगीत विषयक जानकारी भी मिलती है। विष्णु धर्मोत्तर के तृतीय-खण्ड के 18वें अध्याय में गायन से और 19वें अध्याय में वाद्य से संबंधित विषय है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में गीत को चतुर्विध बताया गया है जो पद, स्वर, ताल एवं प्रयोग है। इसमें वादी-संवादी एवं अनुवादी का भी उल्लेख है। इसमें 7 स्वरों का सामंजस्य नव रसों से किया गया है।[43] इस पुराण में भी सामगान को महत्ता दी गई है।[44] उर, कण्ठ तथा सिर के तीन स्थानों से मन्द्र, मध्य तथा तार सप्तक उद्‌भूत होते हैं। ग्राम तीन है। षड्‌ज, मध्यम तथा गांधार।[45]

विष्णुधर्मोत्तर में 49 तानों का वर्णन मिलता है। मध्यम ग्राम की 20 तानें, षड्‌ज ग्राम की 14 तानें व गंधार ग्राम की 15 ताने नील कंठ महादेव ने बताई है। प्रसन्न प्रारंभ, प्रसन्न अंत, प्रसन्न आद्यन्त तथा प्रसन्न मध्य ये 4 प्रकार के अलंकार हैं।[46]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के 18वें अध्याय में अतोद्य का वर्णन है। अतोद्य चार प्रकार का बताया गया है- तत, सुषिर, घन, अवनद्य। तांत के वाद्य तत वाद्य है, बांसुरी इत्यादि छिद्रवाले वाद्य सुषिर वाद्य हैं, मंजीरा इत्यादि घन वाद्य है और मुरज, मृदंग इत्यादि अवनद्य या मढे हुए वाद्य हैं। इसमें अवनद्ध वाद्यों को बजाने की चार शैलियाँ बताई गई हैं- (1) अंड्‌डित (2) वितस्त (3) आलिप्त और (4) गोमुखी। ये मार्ग भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रहार और करण पर आश्रित थे।

वायु पुराण

मनीषियों के मतानुसार वायु पुराण भारत के प्राचीनतम पुराणों में से अन्यतम

---

[43] भारतीय संगीत सरिता - डॉ. रमा सर्राफ - पृ. 34

[44] भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप - डॉ. राजीव वर्मा - डॉ. नीलम पारीक - पृ. 19

[45] संगीत कला विहार - (विष्णु धर्मोत्तर पुराण में संगीत विधान) नीलकंठ महादेव केट्‌ठकर - पृ. 366 (सितम्बर 1968)

[46] वही - पृ. 366

है। 'वायु पुराण के 86 और 87 अध्याय में हमें संगीत विषयक सामग्री प्राप्त होती है। ऐसा कहा जाता है कि, इस पुराण का संकलन ई. शती 3 से ई. शती 5 तक हो चुका था।[47]

वायु पुराण में स्वर मण्डल का उल्लेख करते हुए कहा गया है 7 स्वर, 3 ग्राम, 21 मूर्च्छना तथा 49 तान के समुदाय को स्वर मण्डल की संज्ञा दी गई है–[48]

मध्यम ग्राम में –20 तानें

षड्ज ग्राम में – 14 तानें

गंधार ग्राम में – 15 तानें

49 तानें

ये तानें यज्ञ के अवसर पर उपयोग में आती थी।

गीतक

वायुपुराण में भी गीतक का उल्लेख हुआ है। गुरू, लघु अक्षरों और भिन्न तालों के आधार पर भिन्न प्रकार के रचित गीतक कहलाते हैं। ये गीत भेद थे। वायु पुराण में मद्रक, अपरान्तक, उल्लोप्यक, प्रकरी, रोविन्द अथवा रोविन्दक, औवेणक तथा उत्तर इन सात प्रकार के गीतकों का उल्लेख हुआ।[49]

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण में साम गान एवं गांधर्व के विषयों का वर्णन है। साम की उत्पत्ति एवं विविध कार्यों में उसका उपयोग समझाया गया है। अ॰ 23/51–53 में कम्बल और अश्वतरनाग को भगवती सरस्वती की आराधना से सप्तस्वर, सप्तग्रामराग, सप्तगीत, सप्तमूर्च्छना, उन्चासतानों, तीनग्राम, चार प्रकार के पद (निबद्ध–अनिबद्ध, सताल–अताल नाट्यशास्त्र के अनुसार) तीन प्रकार के ताल

---

[47] भारतीय संगीत सरिता – डॉ. रमा सर्राफ – पृ. 32

[48] वही – पृ. 32

[49] भारतीय संगीत का इतिहास – ठाकुर जयदेव सिंह – पृ. 219

(चतस्त्र, तिस्त्र, मिश्र) तीन स्थान, तीन लय तीन यति, चार प्रकार के आतोद्य (वाद्य) इन सबका ज्ञान प्राप्त होना वर्णित है। इन विषयों में गांधर्व के सम्पूर्ण विषयों का समावेश हो जाता है।[50]

मार्कण्डेयपुराण पुराण में 7 गीतक का नामोल्लेख इस प्रकार है-

(1) मद्रक (2) द्विकलमद्रक (3) अपरान्तक (4) उल्लोपयक (5) प्रकरी (6) औवेणक (7) उत्तर गीतक।[51]

इस प्रकार विविध पुराणों में उपलब्ध सांगीतिक तत्व, ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पौराणिक युग में संगीत संबंधी विधानों उनकी पद्धतियों, नीति नियमों और प्रकारों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि उस समय संगीत का उन्नत रूप विद्यमान था। पुराणों में 'सामगान' तथा सामगायकों की महत्ता के प्रतिपादन के साथ गांधर्व के प्रचलित रूप और उसके सैद्धांतिक पक्ष की आधिकारिक विवेचना की गई है। इससे स्पष्ट यह है कि उस समय में संगीत का पर्याप्त विकास हो चुका था।

रामायण काल में संगीत

रामायण भारत का प्राचीन सांस्कृतिक महाकाव्य है। भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के परिज्ञान का यह महत्वपूर्ण स्रोत है। रामायण की उद्भावना आदि कवि वाल्मीकि के द्वारा हुई, और वही पावन सरित परम्परागत रूप से आधुना तक जन मानस को परिपल्लवित करती आई है। विद्वानों के अनुसार मानव-जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं, जिसकी झांकी रामायण में न मिलती हो अथवा ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं जिसका आभास उसमें प्राप्त न होता हो।

आदि कवि ''वाल्मीकि'' के अनुसार रामायण का निर्माण 'गेय-काव्य' के रूप में हुआ है। रामायण काल में संगीत विषयक समुन्नति तथा प्रसार के सर्वत्र दर्शन होते हैं।[52]

---

[50] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवागंन- पृ. 54

[51] भारतीय संगीत सरिता - डॉ. रमा सर्राफ - पृ. 33

[52] संगीत युगे-युगे -तज्जमुल खां - पृ. 33

'रामायण काल में सारे समाज में संगीत वैदिक काल की तरह ही पवित्र हो गया था। संगीत का विकास छोटे-छोटे स्वरों से उठकर विस्तृत रूप धारण करने लगा था। प्रत्येक घर में संगीत का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान था। प्रात:काल से ही संगीत के माध्यम से ईश्वरोपासना होने लगती थी। रामायण में श्री रामचन्द्र के शुभ-विवाह के अवसर पर संगीत का आयोजन हुआ था। वीणा तथा मृदंग आदि वाद्यों का वादन किये जाने का भी वर्णन प्राप्त होता है।[53]

इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर संगीत तथा उसके विभिन्न वाद्यों- लय, ताल, मात्रा अंगहार, अक्षर सम और संगीतमय दृश्यों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख हुआ है। आतोद्य विधि, मूर्च्छना, जाति, राग, कैशिक राग व ग्राम रागादि का भी विपुल वर्णन मिलता है। इसमें गांधर्वगान के प्रसंग में गायन तथा तंत्रों में विभिन्न भावों के प्रकाशन हेतु काकु-स्वर का भी परिचय दिया गया है।

तां स शुश्राव काकुतस्थ पूर्वाचार्य विनिर्मिताम्।[54]

अर्थात् मन के भिन्न-भिन्न भावों का प्रकाशन करने के लिए कण्ठ स्वर की जो भिन्नता तथा विचित्रता व्यक्त होती है, उसको काकु कहा जाता है।

वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश को रामायण का गायन तथा वीणा-वादन सिखाए जाने का उल्लेख है कि महर्षि बाल्मीकि ने लव-कुश को वीणा वादन और कंठ संगीत की पूर्ण शिक्षा प्रदान की।[55]

'यज्ञ के समय भगवान वाल्मीकि मुनि अपने शिष्यों के साथ उसमें शीघ्रता पूर्व पधारे। उन्होंने उस दिव्य एवं अद्‌भुत यज्ञ का दर्शन किया और ऋषियों के लिए जो बाड़े बने थे, उनके पास ही उन्होंने अपने लिए भी सुन्दर पर्णशालाएँ बनवायीं। वाल्मीकि जी सुन्दर बाड़े के समीप अन्न आदि से भरपूर बहुत से छड़े खड़े कर दिए थे। साथ ही अच्छे-अच्छे फल तथा मूल भी रख दिए थे। राजा श्री रामचन्द्र तथा बहुसंख्यक महात्मा-मुनियों द्वारा भली-भाँति पूजित एवं सम्मानित हो

---

[53] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - शर्मा स्वतंत्र - पृ. 15-16

[54] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. सुनीता शर्मा - पृ. 52-53

[55] संगीत चिन्तामणि - आचार्य बृहस्पति - पृ. 31

महातेजस्वी आत्मज्ञानी वाल्मीकि मुनि ने बड़े सुख से वहाँ निवास किया।[56] उन्होंने अपने हृष्ट-पुष्ट दो शिष्यों (लव-कुश) से कहा-

स शिष्यावब्रवीद् धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ।

कृत्सनं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा।।

ऋषि वाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च।

रश्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च।।

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते।

ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः।।

इमानि च फलायन्त्र स्वादूनि विविधानि च।

जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यस्वद्य गायताम्।।

न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ।

मूलानि च सुमृष्टानि न रागात्परिहास्यथः।।

यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः।

ऋषिणामुप विष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम्।।

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा।

प्रामणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्विष्टं मया पुरा।।

लोभश्चापि न कर्त्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया।

किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा।।

यदि पृच्छेत्स काकुत्सथो युवां कस्येति द्वारकौ।

---

[56] रामायण - वाल्मीकि - उत्तर काण्ड - पृ. 1651

वाल्मीकेरथ शिष्यौः द्वौ बू तमेवं नराधिपम्।।

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वाऽपूपूर्वदर्शनम्।

मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ।।[57]

(उत्तर काण्ड-93 सर्ग-श्लोक 5-14)

कि तुम लोक ऋषियों के यातायात के मार्गों में, ब्राह्मणों के निवासस्थानों में, राजमार्गों और गलियों में राजाओं के घरों में, राम के भवन के द्वार पर और विशेषतया ऋत्विजों के समक्ष 'रामायण' का गान करना। फलों एवं मूलों का सेवन करने से न तो तुम लोग थकोगे ही और न राग भ्रष्ट होंगे। यदि 'रामायण' सुनाने के लिए तुम्हें महाराज राम बुलाए तो विराजमान ऋषियों के समक्ष मेरी बताई हुए गान योजना के अनुसार गाना। मेरे उपदेश के अनुसार द्रुत, विलंबित और मध्यलय का उपयोग करते हुए एक-एक दिन में बीस-बीस सर्गों का गायन करना। धन की इच्छा से तनिक भी लोभ न करना, क्योंकि फल-मूल का सेवन करने वाले आश्रमवासी व्यक्तियों को धन से क्या करना है? यदि राम पूछें कि तुम किनके पुत्र हो, तो इतना ही कहना कि हम वाल्मीकि के शिष्य हैं। ये मधुर तंत्रियाँ हैं। इन्हें मन्द्र, मध्य एवं तार-स्थान में मिलाकर प्रसन्न मन से मधुर रूप में गाना।

रामायण में गायन के लिए गांधर्व संज्ञा प्रचलित थी। गायन को संगीत का प्रमुख अंग माना जाता था तथा वादन एवं नृत्य को गायन के आश्रित माना जाता था। इस काल में लोक कलाकारों को भी उच्च स्थान प्राप्त था।[58]

रामायण में जाति गायन का उल्लेख इस प्रकार से मिलता है-

जातिभिः सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलय समन्वितम्।

उपर्युक्त श्लोक से ज्ञात होता है कि तत्कालीन गायन सात जातियों में निबद्ध तथा तन्त्र वादन एवं लय से समन्वित था।[59]

---

[57] रामायण - वाल्मीकि - उत्तर काण्ड - पृ. 1651

[58] संगीत युगे-युगे - तज्जमुल खाँ - पृ. 33

[59] संगीत मधुबन - मधुबाला सक्सेना - राकेशबाला सक्सेना - पृ. 49

ठाकुर जयदेव सिंह का मानना है कि वैदिक काल में जातियाँ नहीं थी। परन्तु आज हमें राग का जो स्वरूप प्राप्त है वह जातियों से ही माना गया और ये जातियाँ रामायण में मिलती है–

''सप्तभिर्जातिभियुक्तं''

जाति के पहले सप्त (सात) की संख्या लगी हुई है। सात शुद्ध जातियाँ थी। आगे चलकर 11 और विकृत जातियों का विकास हुआ। रामायण में केवल 7 जातियों की संख्या दी गई है।[60]

वाल्मीकि रामायण में एक ओर जाति का उल्लेख प्राप्त होता है। तो दूसरी ओर सुन्दर काण्ड में निहित पंक्ति– ***''चरिते कैशिकाचार्ये रैरावत निषेवतषे''*** (सुन्दर काण्ड–श्लोक–165) में कैशिक शब्द ध्यानाकर्षक है। जिसे टीकाकार गोविन्दराज ने राग विशेष मानते हुए कहा है–

कैशिकै रागविशेषे आचार्ये विद्याधर विशेषे रित्यर्थः[61]

रागों के अन्तर्गत कैशिकं नामक विशिष्ट राग के प्रचलन का स्पष्ट प्रमाण रामायण में प्राप्त होता है।[62]

मूर्च्छना का प्रयोग सामवेद के गान में ही हो चुका था। रामायण काल में इनका प्रचुर और स्पष्ट प्रयोग होने लगा। 'मूर्च्छना' भारतीय संगीत का 13–14 शती तक आधार रही।

ठाकुर जयदेव सिंह का मानना है कि– वे दोनों बालक (लव–कुश) 'मूर्च्छना' तत्व को जानते थे। वीणा को किसी मूर्च्छना में मिलाकर तब गायन या वादन होता था। यह उत्तरकाण्ड के 93सर्ग के 14 वें श्लोक से स्पष्ट है–

इमास्तन्त्रीः सुमधुरा स्थानं वार्पूदर्शनम्।

मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ।।[63] ***(सुन्दर काण्ड श्लोक–14)***

---

[60] भारतीय संगीत का इतिहास – ठाकुर जयदेव सिंह – पृ. 163

[61] संगीत मधुबन – मधुबाला सक्सेना – राकेश बाला सक्सेना – पृ. 43

[62] भारतीय संगीत का इतिहास – परांजपे – पृ. 153

[63] भारतीय संगीत का इतिहास – ठाकुर जयदेव सिंह – पृ. 165

तुलसीराम देवांगन के अनुसार- महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि राग विकास के लिए लावण्य गुण अत्यंत आवश्यक है। उन्होंने 'बालकाण्ड' में जाति राग एवं 'सुन्दरकाण्ड' में कैशिक राग व ग्राम रागादि का अति सुन्दर वर्णन किया है।[64]

रामायण काल में नृत्यकला को विशेष सम्मान प्राप्त था। ईश्वराधना के लिए नृत्य कला का आलम्बन लिया जाता था। रावण द्वारा शिवार्चना के पश्चात् नृत्य और गान किये जाने का उल्लेख प्राप्त है-

समर्चयित्वा स निशाचरो जंगौ।

प्रसार्य हस्तानप्रणनर्त चाग्रतः।।[65] (उत्तर काण्ड - 31/44)

रावण के अन्तः पुर में वीणा और विपंची जैसे वाद्यों की चर्चा का साथ-साथ होना इस तथ्य का परिचायक है कि उस युग में भारतीय वृन्दगान की परम्परा विकसित थी और वह पटह, मृदंग, डिंडिम, पणव, मुरज, मुंडक, आडम्बर और चेलिका जैसे अवनद्ध वाद्यों के द्वारा किया जाता था, क्योंकि स्वाति ने छोटे-बड़े और मझोले आकार के नील कमलों की पंखुड़ियों पर वर्षा की बूंदों और जल-धाराओं के आधार से उत्पन्न ध्वनियों का अनुकरण करने के लिए ही विश्वकर्मा की सहायता से विविध वाद्यों का निर्माण किया।[66]

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार- रामायण काल में वैदिक काल की भांति वीणा का प्रचुर प्रचार था। वीणा का रामायण में अयोध्या काण्ड के 39वें सर्ग के 39 श्लोक में सुंदर काण्ड के 10वें सर्ग के 37वें और 40वें श्लोक में उल्लेख हुआ है। वीणा में भी एक विशेष प्रकार की विपंची वीणा का उल्लेख सुंदर काण्ड के 10वें सर्ग के 41वें श्लोक में पाया जाता है। वह इस प्रकार है-

विपञ्ची परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी।

निद्रावशमनुत्राप्ता सह कान्तेव भामिनी।।[67]

---

[64] विश्व संगीत का इतिहास - देवांगन तुलसीराम - पृ. 17

[65] भारतीय संगीत का अध्यात्मिक स्वरूप - डॉ. राजीव वर्मा - डॉ. नीलम पारीख - पृ. 26

[66] संगीत चिन्तामणि - आ. वृहस्पति - पृ. 36

[67] भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह - पृ. 170

हनुमानजी ने लंका जाकर रावण के महल को देखा। इस स्थल पर वाल्मीकि ने महल का बहुत सुंदर वर्णन दिया है। साथ ही रावण के महल की उन सुंदरियों का भी वर्णन है जो भिन्न-भिन्न वाद्यों को लेकर सोई हुई थी। उसी संदर्भ में ऊपर लिखित विपंची का वर्णन हुआ है।

गीत एवं नृत्य के साथ वीणा जैसे तंत्री वाद्य मृदंग, मुरज, पणव, पटह, दुंदुभि, मंड्डुक, चेलिका, आडम्बर जैसे अवनद्ध वाद्यों के वादन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सुषिर वाद्यों में सर्वोत्कृष्ट वेणु या वंश का नामोल्लेख रामायण में उपलब्ध नहीं है। इससे यह पता चलता है कि, उस समय तक वंश या वेणु का समाज में पर्याप्त प्रचार नहीं था।[68]

रामायणकालीन वाद्यों के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से विचार किया है और सभी ने अनेक वाद्य यन्त्रों का उल्लेख भी किया है। गम्भीर आड़ोलन और विलोड़न करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वाद्य यन्त्रों की सूची लगभग वही है केवल लेखकों ने अपनी रूचि के अनुसार अपने क्रम परिवर्तित कर दिये हैं।[69]

वाल्मीकि रामायण में 'युद्ध-काण्ड' में महर्षि वाल्मीकि ने कुछ अन्य प्रकार के वाद्य यन्त्रों का भी उल्लेख किया है, परन्तु उनके प्रमुख नाम न देकर *'राक्षसानुमतैः वाद्यैः'* कहकर संतोष कर लिया है। अर्थात् ऐसे वाद्य-यन्त्र जो राक्षसों के अनुकूल हों, राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त थे और राक्षस ही जिनके मर्मज्ञ थे। अतः उनके पृथक नामों की आवश्यकता नहीं है किन्तु यह निश्चित है कि वाद्य यन्त्र आर्यों के नहीं थे। अतः महर्षि वाल्मीकि ने उनका वर्णन आवश्यक नहीं समझा क्योंकि रामायण के नायक भगवान राम है और रामायण का उद्देश्य आर्य-मर्यादा की स्थापना करना है।[70]

'रामायण' के अध्ययन से अनेक ऐसे तथ्य सामने आते हैं जो भारतीय संगीत के ऐतिहासिक विकास क्रम में छूटी हुई कड़ियों को जोड़ने की दृष्टि से

---

[68] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन - पृ. 66

[69] भारतीय संगीत का अध्यात्मिक स्वरूप - डॉ. राजीव वर्मा - डॉ. नीलम पारीख - पृ. 28

[70] वही - पृ. 30

अत्यन्त महत्व पूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। उदाहरणार्थ- 'लव-कुश' द्वारा वीणा बजाकर 'रामायण' का गान करना' इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि 'रामायण' सम्पूर्णत: एक ऐसा गेय काव्य है जिसमें संगीत की अपार सम्पदा सन्निहित हैं संगीत गायन तथा प्रशिक्षण से सम्बन्धित वर्णन ग्रंथ में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होते हैं जिनके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उस युग में गंधर्व के अन्तर्गत दो प्रकार की संगीत पद्धतियाँ प्रचलित थीं- मार्गी तथा देशी। दूसरे प्रकार का गायन साम था।[71]

इस प्रकार 'रामायण' ने हजारों वर्षों से हमारे मन मस्तिष्क और व्यवहार को लौह चुम्बक की तरह प्रभावित कर रखा है। एक भारतीय हिन्दू चाहे वह पढ़ा लिखा हो या अनपढ़, गरीब हो या सम्पन्न, रामायण को वह सम्मान की दृष्टि से देखता है। ये सभी रामायण के रचयिता वाल्मीकि को एक आद्य कवि के रूप में मानते हैं और रामायण एक आद्य सर्वप्रथम काव्य है, ऐसी दृढ़ मान्यता है। रामकथा को अपने काव्यमर्म प्रतिष्ठित करने वाली वाल्मीकि रामायण में भारत वर्ष के सुदूर अतीत की गौरव-गरिमा, सर्वस्व त्याग, प्रचण्ड शौर्य, अद्‌भुत सहिष्णुता एवं साम्यशील की ओजस्विनी छटा प्रस्फुटित होती है। रामायण वास्तव में एक सुन्दर कृति है, जिसमें भगवान राम के चरित्र को संगीत के माध्यम से घर-घर पहुँचाया जाता है।

महाभारत काल में संगीत

महाभारत का भारतीय साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रहा है। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति का मानचित्र प्रस्तुत करने के कारण ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में इसका सर्वत्र समादर है। भारतीय सांगीतिक इतिहास के प्राचीन काल के जिस समय को महाकाव्य काल कहते हैं, उसे वीर काल भी कहते हैं। इस काल के अन्तर्गत महाभारत का समय आता है।

महाभारत में संगीत विद्या को गंधर्वों में विशेष रूप से लोकप्रिय होने के कारण 'गंधर्व विद्या' कहा गया है जिसके तीन अंग हैं- गायन, वादन और नृत्य।

---

[71] छायानट - डॉ. रामावल्लभ मिश्र के लेख से - पृ. 8 (जुलाई-सितम्बर 1982)

अधिकांश संपन्न परिवारों की भांति उस युग के अभिजात्य परिवारों में, संगीत की नियमित शिक्षा देने वाले शिक्षक नियुक्त किये जाते थे। राज्य सभाओं में संगीत विशारदों की नियुक्ति इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि संगीत जन सामान्य में पर्याप्त लोकप्रिय था। धार्मिक यज्ञ हो या विवाह के मांगलिक अवसर, शौर्य प्रदर्शन का क्षेत्र हो या आमोद प्रमोद वाले महोत्सव, युद्ध हो या शांति, संगीत अपनी छटा बिखेरता रहता।

किसी विद्वान का मानना है कि, श्रीकृष्ण संगीत विद्या में निपुण तो थे ही किन्तु यदि महाभारत काल में युद्ध एवं राजनीति नहीं होती तो संगीत का प्रचार-प्रसार विपुल मात्रा में हो पाता। महाभारत कालीन किवदंति के अनुसार अर्जुन ही वह प्रथम व्यक्ति हैं जो स्वर्ग से संगीत को धरती पर लाये। किन्तु इतिहासकार डाइयोगाल ने वंशीवादक कृष्ण को ही उस युग का महान् संगीतज्ञ माना है और उस काल के संगीत के विकास का संपूर्ण श्रेय कृष्ण को ही दिया जबकि लायन ने कृष्ण को वंशीवादन में और अर्जुन को वीणावादन में अद्वितीय माना है।[72]

महाभारत काल में भारत में सामगान और गांधर्व अपनी-चरम सीमा पर थे। यह काल वैदिक संस्कृति का चरमोत्कर्ष काल अथवा स्वर्ण युग कहा जा सकता है। यज्ञों का उस युग में पूर्ण प्रचलन था। राजसूय, वाजपेय और अग्निष्टोम यज्ञों का उल्लेख 'महाभारत' में मिलता है। सामगान की शिक्षा में स्वर, पद, स्तोम तथा स्तोभ आदि सभी अंगों पर पूरी तरह से ध्यान दिया जाता था। महाभारत में ऐसे बहुत से कथानक हैं, जिनमें संगीत का वर्णन विशद् रूप से किया गया है। वैदिक गान के अतिरिक्त गांधर्व का प्रचार समाज में पूर्णतया था। [73]

देव गंधर्व तथा देशगीत- महाभारत में महर्षि व्यास जी ने इन दोनों शैलियों को देव गंधर्व अथवा दिव्य संगीत कहा है। 'देव गांधर्वम्' का सम्पादन प्रधानतया देवताओं को प्रसन्न करने के लिए किया जाता था (म. 8-34-92) और देव लोक, कैलाश (म. 13-140-8,9,10), इन्द्रलोक (म. 3-168-10) आदि उससे गूंजते रहते थे। गायन देवताओं द्वारा किया जाता था; जैसे- शंकर (म.

---

[72] महाभारत समाज संस्कृति दर्शन - डॉ. सुरेन्द्र सिंह नेगी - पृ. 97

[73] छायानट - डॉ रामावल्लभ मिश्र के लेख से - पृ. 9 (जुलाई - सितम्बर 1982)

13-14-89), ब्रह्मा (म. 6-65-69) और इन्द्र (म. 9-46-59); नारद (म. 13-89-9), तुम्बरू (म. 3-159-29) जैसे मुनियों द्वारा और अर्ध देवताओं, जैसे- देवाप्सरा, गांधर्व (म. 2-10-12), विश्वावसु (म. 3-43-18), किन्नर (म. 7-86-29), हा हा हू हू (म. 1-122-59) आदि द्वारा किया जाता था। नृत्य के अतिरिक्त इसमें अनेक देवगीत शामिल थे। जिन्हें गांधर्व स्वरों में स्वरबद्ध तथा विभिन्न दिव्य तालों में ताल बद्ध किया गया था। इनकी संगति दिव्य तानों तथा दिव्य वादित्रम् द्वारा की जाती थी जिनमें देव दुंदुभि, देव तूर्य तथा अन्य देव वाद्य शामिल थे।[74]

देश गीत- महाभारत में देश गीत का प्रयोजन मर्त्य-लोक के शिष्ट-जन को प्रसन्न करने के लिए था। इसमें भी विविध गीत, ताल तथा नाना प्रकार के वाद्य शामिल थे। नरेशों, द्विज तथा अन्य मान्यजन सब इस कला के संरक्षक थे और उनमें कुछ जैसे- पार्थ, कुंती, पाञ्चाली, गांधारी, धृतराष्ट्र इस कला में प्रवीण थे, जो व्यवसायिक रूप से इस कला की प्रस्तुति करते थे उन्हें सूत, मागध, बन्दी, वैतालिक और चारण कहा जाता था।[75]

शास्त्रीय दृष्टि से संगीत कला में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का ही सामाद्य होता है। 'संगीत रत्नाकर के अनुसार संगीत तीन प्रकार का होता है- कण्ठ्य, वाद्य तथा नृत्य। किन्तु नृत्य वाद्य संगीत का अनुसरण करता है। इसलिए 'संगीतरत्नाकर' में पहले कण्ठ्य संगीत का वर्णन मिलता है। संगीत रत्नाकर का दृष्टिकोण महाभारतकार के दृष्टिकोण से बहुत सदृश्य रखता है। महाभारत में एक स्थान पर तीनों प्रकार के संगीत का उल्लेख हुआ है, जिसमें कण्ठ्य संगीत को ही प्रथम स्थान दिया गया है-

गायन्नृत्यन वादंश्च देवयानीमतोणयत्।

संशीलयन् देवयानी कन्यां समप्राप्त यौवनम्।।[76] (आदि 71, 22)

---

[74] छायानट - डॉ. लीला ओमचेरी के लेख से - पृ. 18 (अप्रैल-जून 1990)

[75] वही - पृ. 18

[76] सांस्कृतिक शिक्षा के उद्विकास में संगीत का योगदान - राज श्री - पृ. 206

उपर्युक्त पद्य में स्पष्टतः गायन, नृत्य एवं वादन इस क्रम से संगीत की तीन अन्वितियों का उल्लेख हुआ है। महाभारत में गान के साथ अनुगान का भी उल्लेख हुआ है–

अनुगायमाना ललना रहः पर्यचस्तदा।।[77] ***(आदि 71, 24)***

इससे स्पष्ट है कि आनंदोल्लास के अवसरों पर गायन एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। यज्ञ सत्र में नृत्य–गीत आदि का भी आयोजन किया जाता था। उस समय का दृश्य किसी महोत्सव से कम न होता था–

मतोन्मत्त प्रमुदितं प्रगीतयुवतीजनम्।

मृदऽगशऽगशब्दैश्च मनोरममभूत्तदा।।[78] ***(आश्व 91–39)***

महाभारत मूल के चतुर्थ भाग के पृ. 321 पर अश्वमेघ पर्व के अन्तर्गत अनुगीता–पर्व में कहा गया है–

षड्जर्षभश्च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा।

अंतः परं तु विज्ञेयो निषादो धैवतस्तथा।।

इष्टश्चानिष्ट शब्दश्च संहतः प्रविभागवान।।[79] ***(म. मूल भाग–4, पृ. 321)***

अर्थात् आकाश में उत्पन्न 'प्रविभागवान्' शब्दों के दस प्रकार है– (1) षड्ज (2) रिषभ (3) गांधार (4) मध्यम (5) पंचम (6) निषाद (7) धैवत (8) इष्ट (9) अनिष्ट और (10) संहत।

प्रविभागवान्–इस शब्द को संगीत चिंतामणि के लेखकों ने इस प्रकार परिभाषित किया है कि 'शब्द तो अखण्ड है, विशिष्ट श्रुति–संख्या के अनुसार मंद्र, मध्य, तार–स्थान में स्वर–सप्तक की स्थापना उसका 'विभाजन' या 'विभाग' (विशिष्ट रूप में बांटना) या षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम अन्तर्गत स्वरों को व्यवस्थित करना है।

---

[77] वही – पृ. 206

[78] वही – पृ. 206

[79] संगीत चिन्तामणि–आ. बृहस्पति–श्रीमती सुमित्रा कुमारी–श्रीमती सुलोचना बृहस्पति – पृ. 24

वर्णमाला के आधार पर जब सार्थक शब्दों की योजना होती है, तभी भाषा की सृष्टि होती है, इसी प्रकार स्वर-सप्तक के आधार पर रंजक जातियों अथवा रागों की अवतारणा से स्वर-सप्तक में रंजकता की सृष्टि की स्वर-सप्तक को 'प्रकर्ष' (महत्व, गौरव) देकर व्यवहार के योग्य बनाती है। अतः 'प्र+वि+भागवान्' (प्रविभागवान्) शब्द का अर्थ ग्राम, जाति एवं राग इत्यादि के विभाग से युक्त 'शब्द' हुआ।

इष्ट अनिष्ट और संहत- शब्द के उपर्युक्त दस भेदों में सात स्वर-संज्ञाएँ हैं, जो सप्तक में स्वरों के निश्चित स्थान का बोध कराती है। इष्ट, अनिष्ट, संहत स्थापित स्वरों के पारस्परिक संबंध की ओर संकेत करते हैं।

इष्ट का अर्थ 'वांछनीय, प्रिय या चाहा हुआ' है और 'अनिष्ट का अर्थ' 'अवांछनीय', अप्रिय या अनचाहा है। जिससे प्रयोजन की सिद्धि हो, सुख हो, वही 'इष्ट' है और प्रयोजन-सिद्धि में जो बाधक हो, वह अनिष्ट है।

महाभारत काल में गेय प्रबन्धों के अन्तर्गत साम, गाथा तथा मंगल गीतियों का प्रमुख रूप से उल्लेख पाया जाता है। इन गाथाओं का गान गंधर्व तथा कथा-गायक एवं पौराणिक जैसे व्यक्तियों के द्वारा किया जाता था-

(अ) गाथामप्यत्र गायन्ति।

(आ) सामानि स्तुतिगीतानि गाथाश्च विविधा अपि।

(इ) गायन्ति गाथा गन्धर्वान्...।

(ई) दिव्यगानेषु गायन्ति गाथा दिव्याश्च भारत।

(उ) अत्र गाथा ब्रह्मीताः कीर्तयन्ति पुराविदः।।[80]

गाथाओं का ब्रह्मगीत होने के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख करता है कि इन गाथाओं का गान प्राचीन काल से परिनिष्ठत रूप में किया जाता रहा है। गाथाओं के ब्रह्मगीत होने से महाभारतकार का तात्पर्य उनकी प्राचीन परम्परा से है, इसमें

[80] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, - पृ. 155-156

संदेह नहीं। याज्ञवल्क्य स्मृति में ऋक्, गाथा तथा पाणिका नामक गीतों को प्राचीन एवं ब्रह्मोक्त माना गया है।

वैदिक काल की तरह इस काल खण्ड में भी वैदिक संगीत का भी प्रचलन था। साम गान वैदिक आर्यों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। यज्ञादि कार्यों के अतिरिक्त जन्म तथा मृत्यु जैसे लौकिक प्रसंगों पर भी सामगान किया जाता था। ऋषि-मुनियों के आश्रम में साम गायन व ऋचाओं का पठन-पाठन निरंतर चलता रहता था। यज्ञ के अवसर पर साम गायकों को बुलाया जाता था। यज्ञ जैसे धार्मिक अवसरों पर व अन्तयेष्टि क्रिया जैसे लौकिक प्रसंगों पर भी सामगान प्रयुक्त किये जाने का उल्लेख महाभारत के निम्न श्लोक में पाया जाता है-

सामानि सामगास्तस्य गायन्ति यमसादने।

हबिर्धान तु तस्याहु परेषां वाहिनी सुखम्।।*[81] *(शांति 89, 52)

इस प्रकार मौसल पर्व में श्री कृष्ण निर्बाण के पश्चात् अन्तयक्रिया के समय पर सामगायकों के द्वारा सामघोष किये जाने का स्पष्ट उल्लेख है।[82]

भारतीय संगीत शास्त्र के लेखक तुलसी राम देवांगन के अनुसार-अनुशासन पर्व अध्याय 14 श्लोक 52-53 ऋषि-मुनियों के आश्रम में संगीत की उपासना के बारे में इस प्रकार उल्लेख किया है-

दिव्यैस्त्रीगीत बहुलो मास्त्रौऽभिमुखो बवौ।।52।।

***गीतैस्तथा किन्नराणामुदारैः शुभैः स्वनैः सामगानां वीर।।53।।*[83]

अर्थात् ऋषियों के आश्रम में संगीत के विविध रूपों की चर्चा व उपासना चलती रहती थी। दानवों के गुरू शुक्राचार्य के आश्रम में मनोरंजन के रूप में संगीत का उपयोग होता था। क्योंकि बृहस्पति पुत्र 'कच' और शुक्राचार्य पुत्री 'देवयानी' दोनों युवावस्था को प्राप्त कर चुके थे। अतः उनका संगीत के द्वारा

---

[81] सांस्कृतिक शिक्षा के उद्विकास में संगीत का योगदान - राज श्री पृ. 211

[82] वही - पृ. 211

[83] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन - पृ. 72-73

मनोरंजन करना अवस्थानुकूल तथा कलात्मक सुरूचि का परिचायक है। महर्षि कण्व के आश्रम में विभिन्न विद्याओं और वेदों के जानने वाले महर्षि निवास करते थे। अतः वहाँ वेदाङ्ग शिक्षा एवं सामगान के रूप में संगीत की आराधना चलती थी।

महाभारत में मृत्युलोक के समान देवताओं की सभा में भी विशिष्ट व्यक्तियों के आगमन पर उनकी सम्मति से सम्मानार्थ गंधर्वों, अप्सराओं के द्वारा गान, वादन और नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। महर्षि अष्टावक्र का धनपति कुबेर के गृह में इसी प्रकार के आतिथ्य का वर्णन है।[84]

वन पर्व में 44वें अध्याय के अन्तर्गत तीसरे श्लोक में इन्द्र ने अर्जुन से कहा- *'नृत्य गीतं च कौन्तेय चित्र सेनादवाप्रहि'* हे अर्जुन गीत, नृत्य इत्यादि चित्र सेन से सीख लो। फिर अर्जुन ने *'गांधर्वमतुल नृत्यं वादित्रं चोप लब्धान्'* (वन. 44. 10), *'सशिक्षितो नृत्य गुणाननेकान्'* महाभारत के भीष्म पर्व (54, 85) में महाभेरी का वर्णन आया है। महाभेरी सामान्यतः भेरी के आकार से बड़ी होती थी। महाभेरी तथा शंख का एक साथ वादन होता था।[85] वाद्यों में वीणा का महत्वपूर्ण स्थान था।

डॉ. लीला ओमचेरी के अनुसार- व्यास ने बारम्बार वीणा अथवा तार वाद्य का उल्लेख किया है जो इस ओर संकेत करता है कि वाद्यों में वह प्रमुख थी और शास्त्रीय परम्परा के गायन और वादन के प्रकारों से अभिन्न थी। वीणा इतनी शुभ व पवित्र मानी जाती थी कि उसे देव-ब्राह्मण पूजा-जैसे अनुष्ठानों (म. 5-40-10) में शामिल किया जाता था।[86]

युद्ध के साथ वाद्यों का प्रयोग पौराणिक काल तक अपनी विकसित अवस्था में पहुँच चुका था। महाभारत जो युद्ध से भरा पड़ा है, युद्ध वाद्यों के विस्तृत प्रयोग का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें अनेक स्थानों पर तूर्य, भेरी, मृदंग, पणव, शंख आदि की तुमुल ध्वनियों के साथ सैनिकों को युद्ध के लिए प्रस्थान करते हुए चित्रित किया गया है। महाभारत के शांति पर्व (100, 46) में ऋग्वेद,

---

[84] वही - पृ. 71

[85] संगीत - डॉ. मनोरमा शर्मा के लेख से - पृ. 5 (जुलाई 2003)

[86] छायानट - डॉ. लीला ओमचेरी के लेख से - पृ. 23 (अक्टूबर-दिसम्बर 1990)

किल-किल आदि वाद्यों की उन धुनों के नाम प्राप्त होते हैं, जो युद्ध रत सैनिकों में उत्साह भरती थी। द्रोण पर्व में (88,1) इसी प्रकार भेरी, मृदंग ओर शंख की ध्वनियों के साथ सेना का कूच करना वर्णित है। भीष्म पर्व (99, 11) में भेरी, पणव और मृदंग का उल्लेख है। विराट पर्व (72, 27) में गोमुख शंख तथा आडम्बर का वर्णन है।[87] इस प्रकार महाभारत के विभिन्न पर्वों में भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्यों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है कि जो निम्नलिखित है- भेरी, मुरज, भडुक्क, गोमुख, शंख, वंश, वीणा (सभापर्व, अ. 71 श्लोक 37-43); वीणा, भेरी, तूर्य, पणव, वंश, कांस्य (विराट पर्व अ. 70, 33-34); शंख, दुंदुभि (उद्योग, अ. 94, श्लोक-4); मृदंग, झझेरा, भेरी, पणव, आनक, गोमुख, आडम्बर, शंख, दुंदुभि (द्रोणपर्व-3-82, श्लोक 4-5); शंख, पणव, मुखवाद्य, तुम्बीवीणा, झझेरी (शांतिपर्व, अध्याय 52, श्लोक 45)।[88]

वादित्रगीतार्थ गुणांश्च सर्वान् (वन. 44.11) अर्जुन ने अनुपम गांधर्व नृत्य, वाद्य गीत सीख लिया।[89]

पांडवों को जुए में हारने के पश्चात् जब तेरह वर्ष का वनवास हुआ, तब बारह वर्ष तो व्यतीत कर दिए परन्तु तेरहवां वर्ष अज्ञात रूप से व्यतीत करना था। अर्जुन के कंधे पर गांडीव रखने के कारण एक गांठ पड़ गई थी, जिसके कारण वह पचाना जा सकता था, इसलिए उसने स्त्री रूप धारण किया और बृहन्नला नाम से प्रसिद्ध हो गए। बृहन्नला राजा विराट के महल में रहकर उत्तरा को नृत्य और गायन सिखाया।[90]

महाभारत में गायन व नृत्य के अतिरिक्त वाद्यों का भी अपना विशेष महत्व था। इस काल में वाद्यों के नए-नए प्रकार प्रचलित हुए और जनता भी संगीत कला में विशेष रस लेती थी। राजाओं को भी संगीत कला का शौक था और वे अपने राज्य में गायक, वादक और नर्त्तक रखते थे। विवाहादि और अन्य प्रसंगों में विविध

---

[87] संगीत - डॉ. मनोरमा शर्मा के लेख से - पृ. 4 (जुलाई 2003)

[88] संगीत - रसिकलाल माणिकलाल पंड्या के लेख से - पृ. 5 (जन. 2004)

[89] भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह - पृ. 188

[90] संगीत - विद्याशंकर अनलेश के लेख से - पृ. 7-8 (मार्च-1988)

प्रकार के वाद्यों की ध्वनि की जाती थी। रण वाद्यों का घोष खूब जोर से किया जाता था। हर एक योद्धा के शंख का अलग नाम था जैसाकि श्रीमद्भागवद्गीता से विदित होता है–

पाञ्चजन्यं ऋषिकेशों देवदत्तं धनञ्जयः।

पौण्ड्रंदध्मौ महाशंऽखं भीमकर्मा वृकोदरः॥15॥

अनन्त विजयं राजा कुन्तीपुत्रो युद्धिष्ठिरः।

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥16॥[91]

अर्थात् श्रीकृष्ण का पाञ्चजन्य, अर्जुन का देवदत्त, भीम का.... पौण्ड्र, युद्धिष्ठिर का मणिपुष्पक नामक शंख था।

अन्य ग्रंथो में संगीत

कौटिल्य का अर्थशास्त्र न केवल संस्कृत साहित्य का अमूल्य ग्रंथ है अपितु अपनी विशिष्टता के कारण विश्वसाहित्य में एक अनुपम स्थान का अधिकारी है। भारत की प्राचीन राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक गतिविधि का परिचय इसमें प्राप्त होता है। यहाँ तत्कालीन ऐतिहासिक पार्श्वभूमि में संगीत विषयक प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

मौर्य काल में संगीत नागरिक जीवन का अभिन्न अंग था। राजा के लिए उपयुक्त विद्याओं में देवत्रयी का स्थान था। वर्णाश्रमधर्म की समीचीन प्रतिष्ठापना करने के लिए जिन विद्याओं का अध्ययन राजा के लिए विहित है, उनमें सामवेद का अन्तर्भाव है।[92] राजसभा में नियुक्त किये जाने वाले कलाकारों में चारण, कुशीलव, तूर्यकार तथा गणिका आदि का समावेश है।[93]

गायन के लिए उक्त ग्रंथ में गीत 'गायन' संज्ञा स्पष्ट रूप से की गई है। वादन के लिए वादक संज्ञा प्राप्त होती है। (2–1.48) वादन के अन्तर्गत निम्नोक्त

---

[91] श्रीमद्भागवद्गीता – अध्याय–1 श्लोक 15–16

[92] भारतीय संगीत का इतिहास – डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे – पृ. 248

[93] वही – पृ. 248

वाद्यों का उल्लेख मिलता है- वाद्य भाण्ड, तुर्य, वीणा, वेणु, मृदंग एवं दुंदुभि।[94]

पतञ्जलि कृत महाभाष्य में मनोरंजन के अंग के रूप में संगीत के कुछ उल्लेख यत्र-तत्र किये गए हैं। समाज, ममास एवं समवाय ये तीन संज्ञाए हैं, जिनका उल्लेख महाभाष्य में मिलता है। ये संज्ञायें तत्कालीन प्रचलित उत्सवों की द्योतक है, जिनमें अनेक प्रकार के मनोरंजन के साथ गीत, वाद्य एवं नृत्य भी होते थे।[95]

वात्स्यायन कृत कामशास्त्र में सर्व प्रथम कलाओं का शास्त्रीय स्वरूप प्राप्त होता है। संगीत के स्पष्ट उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि संगीत का पर्याप्त प्रचार था। यह साहित्य तत्कालीन सामाजिक अवस्था का एक चित्र सा प्रतीत होता है। संगीत को इसमें लेखक ने अन्य कलाओं के अन्तर्गत सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया है।

संगीत के अन्तर्गत आने वाली तीन कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान था। जैसे गीत, वाद्य एवं नृत्य। संगीत के लिए वात्स्यायन ने ''गांधर्व'' संज्ञा का प्रयोग किया है।[96]

वात्स्यायन ने यज्ञरात्रि, कौमुदीजागर तथा सुवसन्तक नामक लोकोत्सवों के नाम दिये हैं, जिनको समस्त नागरिक जन सामूहिक रूप से मनाते थे। इन समारोहों में गीत, वाद्य, नृत्य, नाटक, आख्यायिकाओं तथा हल्लीसक आदि का प्रदर्शन किया जाता था।[97]

---

[94] संगीत मैन्यूअल - डा. मृत्युञ्जय शर्मा - 100-101

[95] वही - पृ. 111

[96] संगीत मैन्यूअल - डॉ. मृत्युन्ञ्जय शर्मा - पृ. 149

[97] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे - पृ. 265

(ख)प्राचीन काल के प्रमुख सांगीतिक ग्रंथों में संगीत संबंधी विषयों की संक्षिप्त चर्चा

नाट्यशास्त्र

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार भरत कृत नाट्यशास्त्र नाट्य वेद के नाम से सम्मानित रहा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार ये चार वेदों के अतिरिक्त पंचम तथा सार्ववर्णिक वेद है। नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहदकोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं प्रमाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है।

इतिहास-पुराण, नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों एवं अन्य साहित्यिक रचनाओं तथा ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में ईसा से कई सदियों पूर्व नाट्यकला विकसित हो चुकी थी। इसके विकास में आदिम जातियों- यक्ष, किन्नर, गंधर्व नट, नर्तक, चारण, मागध, सूत, कथक, ग्रंथिक, कुशीलव आदि जातियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने गायन, वादन, नर्तन, कर्तव्य-प्रदर्शन, कथा वाचन तथा आख्यानोपाख्यानों के नाटकीय प्रस्तुतिकरण के द्वारा इस कला को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संजोये रखा। बाद में ऋषियों-मुनियों एवं आचार्यों ने इस कला को अपनी असाधारण प्रतिभा, अनुपम मनीषा और विवेचना-कौशल से मण्डित कर प्रौढ़, लोकप्रिय एवं व्यापक बनाने का विपुल प्रयास किया है और भरत ने उसे शास्त्र का सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाटयेऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥ (ना.शा. 1/116)

नाट्यशास्त्र को केवल नाट्यकला का ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय कलाओं का विश्वकोष कहा गया है। ऐसा कोई ज्ञान, विज्ञान, शिल्प, कला, विद्या, योग और कर्म नहीं है, जो इस नाट्यशास्त्र में समाहित न हो। काव्य, नाट्य, अभिनय, नृत्य, गीत, वाद्य, वास्तु, मूर्ति, चित्र आदि न जाने कितनी कलाओं का परिनिष्ठित एवं व्यापक विवेचन इस ग्रंथ में हुआ है।

नाट्यशास्त्र का काल

'नाट्यशास्त्र' के रचना काल के विषय में विद्वानों के बीच तरह-तरह के मत प्रचलित है। कुछ लोगों का मत है कि 'नाट्यशास्त्र' भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा विभिन्न खण्ड में लिखा गया है। बाद में सभी खंड को एकत्रित करके एक नया रूप दिया होगा।

'नाट्यशास्त्र' के विषय में कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत किया जा रहा है- 'डॉ. घोष ने अनेक विध अन्तः तथा बाह्य साक्षों के आधार पर नाट्य शास्त्र का काल-निर्धारण किया है। उन्होंने अपना मत बदला भी है। पहले इनका पक्ष था कि नाट्यशास्त्र का समय 200 ई. सन् से लेकर 100 ई.पू. के बीच कहीं होना चाहिए, पर बाद में उन्होंने कई कारणों से इसे बदल दिया। आगे चलकर इन्होंने रचनाकाल 500 ई.पू. माना है। डॉ. घोष ने विभिन्न तर्क आदि के आधार पर नाट्यशास्त्र का रचना काल बताया है जो निम्नलिखित है- 500-300 ई.पू., 500 ई.पू., 400 ई.पू. 400-350 ई.पू. इनके तर्क, कुछ इस प्रकार से है- इसमें प्रयुक्त संस्कृत भाषा का शब्दकोश, इसमें प्रयुक्त छन्दों में वैदिक पद्धति का साम्य, रामायण और महाभारत में उपलब्ध पौराणिक तत्वों की नाट्यशास्त्र में उपलब्ध पौराणिक तत्वों से तुलना करने पर, भास ने अपनी 'अविमारक' नाम की कृति में नाट्यशास्त्र का उल्लेख आदि।[98]

रामकृष्ण कवि का मत है कि नाट्यशास्त्र का वर्तमान स्वरूप कालिदास और अमर कोषकार (चतुर्थ शती) से पूर्व का है।[99] डॉ. एस. के. डे. के अनुसार चौथी शती ई. के लगभग।[100] म.म.पी.वी. काणे के अनुसार- 200 ई.पू., 5वीं शती, तीसरी या चौथी शती ई.।[101]

---

[98] संगीत (नाट्यशास्त्र और भरतः काल निर्धारण के प्रयास) - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के लेख से - पृ. 18 (फरवरी 2004)

[99] वही, पृ. 19

[100] वही, पृ. 21

[101] वही, पृ. 22

डॉ. मनमोहन घोष के मतानुसार- 100 से 200 ई.पू.।[102] डॉ. मुहम्मद इस्माइल खाँ ने 5 शती ई.पू.।[103] डॉ. सी.सी. सरकार दूसरी शती के बाद।[104] डॉ. ए. ए. मेकडोनेल का पक्ष है 600 ई. के निकट।[105] श्री आई. शेखर - 200 ई.पू. तक अस्तित्व में आ चुका था।[106] श्री सुशील कुमार डे के अनुसार- (हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोयटिक्स में) 200 ई.पू. से 200 ई. का मध्य भाग।[107] डॉ. पारस नाथ द्विवेदी-पंचम ई.पू. से प्रथम शताब्दी।[108] स्वतंत्र शर्मा ने तृतीय शताब्दी के लगभग में नाट्यशास्त्र की रचना बताते हैं।[109]

नाट्यशास्त्र का विषय वस्तु

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्योत्पत्ति के वर्णन के साथ नाट्य के स्वरूप एवं महत्व पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय में नाट्यमण्डप के निर्माण के विधि तथा इसके अंग नेपथ्ययगृह, रंगपीठ, मत्तवारणी, स्तम्भ विधान, दास कर्म आदि का विस्तृत विवेचन है। तृतीय अध्याय में नाट्य मंडप की रक्षा के लिए अनेक देवताओं की पूजा विधि एवं वर-प्राप्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में तण्डु द्वारा प्रयुक्त ताण्डव नृत्त के वर्णन के साथ करणों, अंगहारों एवं रेचकों के बारे में विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है। इसी अध्याय में ताण्डव की उत्पत्ति एवं स्वरूप तथा नृत्त एवं नृत्य-प्रयोग विधान के साथ गीत एवं वाद्यों की प्रयोग-विधि का विस्तृत वर्णन है। नृत्तशास्त्र की दृष्टि से इस अध्याय का अधिक महत्व है। पञ्चम अध्याय में पूर्व रंग-विधान का सांगोपाङ्ग वर्णन है। इसी के साथ नान्दी, प्रस्तावना, ध्रुवा एवं चित्र पूर्व रंग विधि का विधिवत् विवेचन किया गया है। नाट्य-रचना एवं नाट्य-प्रयोग की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है।

---

[102] संगीत (नाट्यशास्त्र और भरतः काल निर्धारण के प्रयास) - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के लेख से - पृ. 22 (फरवरी 2004)

[103] वही - पृ. 23

[104] वही - पृ. 23

[105] वही - पृ. 23

[106] वही - पृ. 23

[107] वही - (भरत का काल निर्णय) डॉ. मुहम्मद इसराइल खाँ के लेख से, पृ. 28

[108] नाट्य शास्त्र का इतिहास- डॉ. पारस नाथ द्विवेदी - पृ. 103

[109] भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण - डॉ. स्वतंत्र शर्मा - पृ. 29

षष्ठ अध्याय में रस का शास्त्रीय विवचेन किया गया है। इसमें ऋषियों के द्वारा पूछे गए प्रश्न, रसों के नामकरण का आधार, संग्रह, कारिका और निरूपक्त स्वरूप, नाट्यसंग्रह, रसनिष्पत्ति, रसों की संख्या तथा स्थाई-भावों का विस्तृत विवेचन किया गया है। सप्तम अध्याय में भावों का शास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण विवेचन किया गया है।

अष्टम अध्याय में अभिनय के चार भेद बतलाने के पश्चात् आङ्गिक अभिनय के अन्तर्गत शिर, नेत्र, भ्रू, कपोल, ओष्ठ, मुख, नासिका, ग्रीवा आदि उपाङ्गों के अभिनय का विस्तृत विवेचन किया गया है। नवम अध्याय में हस्ताभिनय के अन्तर्गत संयुक्त और असंयुक्त हस्तमुद्राओं के साथ नृत्त हस्त मुद्राओं का विस्तृत वर्णन है। दशम अध्याय में वक्ष, पार्श्व, कटि, ऊरू, जंघा तथा पैरों से किये जाने वाला अभिनयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। एकादशः अध्याय में चारी-निरूपण के अन्तर्गत आकाशचारी और भौमचारी के वर्णन के साथ स्थानकों का विवेचन किया गया है। द्वादश अध्याय में चारियों के संयोग से बनने वाले मण्डलों के लक्षण, भेद तथा प्रयोग आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। त्रयोदश अध्याय में गति-प्रचार का वर्णन है। इसमें पात्रों के विविध प्रकार की गतियों का विवेचन है। चतुर्दश अध्याय में कक्षा विभाग तथा प्रवृत्ति व्यंजन के प्रतिपादन के साथ लोकधर्मी और नाट्य धर्मी दो नाट्यविधाओं का विस्तृत वर्णन है। पन्द्रहवें अध्याय से वाचिक अभिनय प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत छन्द विभाग की व्याख्या करते हुए अक्षरों के स्वर-व्यंजनात्मक भेद बताकर उनके स्थान, प्रयत्नादि, नाटक में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं का विवेचन किया गया है। सोलहवें अध्याय में वृत्तों की उदाहरण सहित व्याख्या की गई है। सत्रहवें अध्याय के अन्तर्गत काव्य के छत्तीस लक्षणों का उल्लेख किया गया है। उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चारों अलंकारों की व्याख्या तथा गुणों एवं दोषों की चर्चा इस अध्याय की प्रमुख विशेषताएं है। अठारहवें अध्याय में चतुर्विध भाषाओं तथा सप्तविध विभाषाओं का विधिवत् वर्णन है। उन्नीसवें अध्याय में काकु, स्वर तथा उनके प्रकारों और पाठ्य के गुण दोषादि का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

बीसवें अध्याय में दस रूपकों के विस्तृत विवेचन के साथ दस लास्यांगों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इक्कीसवें अध्याय में इतिवृत्त-विधान, संधियों,

पञ्च अवस्थाओं, अर्थप्रकृतियों एवं अर्थोपक्षेपकों का सांगोपाङ्ग विवेचन किया गया है। बाइसवें अध्याय में आहार्याभिनय के अन्तर्गत नेपथ्य-विधान, नेपथ्य के भेद तथा उससे संबंधित अन्य विषयों पर विवेचन किया गया है। चौबीसवें अध्याय में सामान्याभिनय का सांगोपाङ्ग विवेचन है। इसमें सात्विक अभिनय के अन्तर्गत स्त्रियों के स्वभावज एवं अयत्नज अलङ्कारों, हाव, भाव आदि अङ्गज अलंकारों, रस और भावों अनुसार शरीराभिनय, नायक-नायिका भेद आदि का विस्तृत विवेचन है। पच्चीसवें अध्याय में वैशिक पुरुषों के गुणों, उसके मित्र और दूति आदि, स्त्रियों के यौवन की चार अवस्थाओं, प्रेमियों के प्रकार या स्त्रियों को वश में करने का उपायों विस्तृत विवचेन किया गया है। छब्बीसवें अध्याय चित्राभिनय का विधिवत् विवेचन है। अङ्गादिअभिनयों में जो बातें रह गई है। उनका भी इसमें विवेचन किया गया है। सत्ताइसवें अध्याय में दैवी एवं मानुषी सिद्धियों के विवेचन के साथ नाट्य के निर्णायकों एवं परीक्षकों, प्रेक्षकों के गुणों एवं योग्यतादि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

अट्ठाइसवें अध्याय में 4 प्रकार के वाद्यों, सात स्वरों तथा उसके चार प्रकार, ग्राम, मूर्च्छना, श्रुतियों एवं जातियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। उन्नतीसवें अध्याय में तन्त् वाद्यों का वर्णन तथा वीणाओं के स्वरूप की चर्चा की गई है। तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्य बांसुरी के स्वरूप तथा उसकी वादन विधि का विवरण दिया गया है। इकतीसवें अध्याय में ताल तथा लय दिया गया है। बत्तीसवां अध्याय ध्रुवा गीत से संबद्ध है। ध्रुवाओं के सोदाहरण लक्षण देकर गायक तथा वादक के गुणों का दिग्दर्शन किया गया है। तैतीसवें अध्याय में अवन्द्य वाद्यों की उत्पत्ति तथा अंगों की विवेचना की गयी है। चौतीसवें अध्याय में पुरुष और स्त्रियों की तीन प्रकृतियों, चार प्रकार के नायकों तथा अन्तःपुर के परिजनों का वर्णन है। पैंतीसवें अध्याय में नाट्य मण्डली के सदस्यों की स्वभावगत विशेषताओं के आधार पर विट, शकार, विदूषक, चेट, गणिका एवं नायिकादि पात्रों की भूमिका के आबंटन के आधार निरूपित किये गए हैं। छत्तीसवें एवं अंतिम अध्याय में पृथ्वी तल पर नाट्य के संचार तथा नटवंश की उत्पत्ति का इतिहास देते हुए

नाट्यशास्त्र के महात्म्य का वर्णन प्रश्नोत्तर शैली में किया गया है। नाट्यशास्त्र के किसी-किसी संस्करण में सैंतीसवां अध्याय भी मिलता है। इसमें राजा नहुष की कथा का आख्यान दिया गया है।

नाट्यशास्त्र के सांगीतिक विषयों की चर्चा

आधुनिक काल में प्रचलित संगीत का आदि पुरुष कहलाने का श्रेय आचार्य भरत को जाता है। क्योंकि संगीत के इतिहास में सर्वाधिक प्राचीन कृति इनकी ही है, जिसमें सांगीतिक विषय की विस्तृत चर्चा मिलती है। नाट्यशास्त्र में नाट्य की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अंत तक संगीत का प्रयोग बराबर होता रहा है।

स्वर

नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय में सप्त स्वरों का उल्लेख मिलता है-

षड्जश्च ऋषभ श्चैव गांधारों मध्यमस्तथा।

पञ्चमौ, धैवत श्चैव सप्तमोऽथ निषादवान्॥[110]

अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और सातवाँ निषाद। 22 श्रुतियों में इन सप्त स्वरों को इस प्रकार निरूपित किया गया है। 4-3-2-4-4-3-2 अर्थात् षड्ज की चार श्रुति, ऋषभ की तीन श्रुति, गंधार की दो श्रुति मध्यम की चार श्रुति, पंचम की चार श्रुति, धैवत की तीन श्रुति तथा निषाद की दो श्रुति है।

श्रुतिदर्शन विधान

षड्ज तथा मध्यम ग्राम का श्रुति दिखाने के लिए भरत ने नाट्यशास्त्र में विधि बतायी है जो श्रुति दर्शन विधान कहलायी।[111] इसी प्रक्रिया के लिए 'संगीत रत्नाकर' आदि ग्रंथों में इसे 'सारणा' नाम दिया गया है।

इस सारणा विधि के लिए सूक्ष्म स्वर ज्ञान का होना आवश्यक था। यह प्रयोग केवल वही कर सकते हैं, जिनको 22 श्रुतियों का भलि-भांति ज्ञान हो।

---

[110] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन - पृ. 82

[111] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - डॉ. स्वतंत्र शर्मा - पृ. 31

षड्ज तथा मध्यम ग्राम के पंचम से जिनका परिचय था और स्वर-सम्वाद के आधार पर जो वांछित स्वरावली की स्थापना वीणा पर कर सकते हैं।

ग्राम

नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय के 32वें श्लोक में ग्राम का वर्णन इस प्रकार से है-

अथ द्वौ ग्रामौ, षड्जग्रामो मध्यमग्रामश्च! अत्रा

श्रिता द्वाविंशतिः श्रुतयः स्वरमण्डलसाधिताः।[112]

अर्थात् लोक में जिस प्रकार मनुष्यों की बस्ती गांव कहलाती है, उसी प्रकार स्वर सप्तक का निवास-स्थान 'षड्ज ग्राम' और 'मध्यम ग्राम' है। जिस प्रकार लोक में गांव का नेता 'ग्रामीण' (चौधरी) कहलाता है, उसी प्रकार स्वर ग्राम का प्रमुख 'ग्रामीण' कहलाता है।

नाट्य शास्त्र में षड्जग्राम व मध्यम ग्राम का ही उल्लेख मिलता है, परन्तु आचार्य नारद ने 'गांधार ग्राम भी बताया है, परन्तु यह भी बताया है कि उसका गान मृत्युलोक में नहीं होता।'[113]

षड्ज ग्राम के स्वरों का श्रुत्यान्तर इस प्रकार है- 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां। गांधार ग्राम का श्रुत्यान्तर- 4, 3, 4, 2, 4, 3, 2 म, प, ध, नि, सा, रे, ग। उपर्युक्त स्वरों को 22 श्रुतियों पर ही निरूपित किया गया है।

मूर्च्छना

क्रमयुक्त सात स्वरों (शुद्ध) का जो आरोह तथा अवरोह हो उसे भरत ने मूर्च्छना कहा है, तथा मन्द्र आदि तीन स्थानों की प्राप्ति करवाना इन मूर्च्छनाओं का प्रयोजन रहता है। अतः मूर्च्छनाएँ दोनों ग्रामों में सात-सात होगी।[114] षड्ज ग्राम में

---

[112] नाट्यशास्त्र 28वाँ अध्याय - अनुवादक - आचार्य बृहस्पति - पृ. 35

[113] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन - पृ. 83

[114] नाट्यशास्त्र (भाग 4) - सम्पादक - श्री बाबूलाल शुक्ल, शास्त्री - पृ. 24

सात मूर्च्छनाएँ होती है–

ह्युत्तरमन्द्रा स्याद्रजनी चोत्तरायता।

चतुर्थी शुद्धषड्जा तु पञ्चमी मत्सरीकृता।।

अश्वक्रान्ता तु षष्ठी स्यात् सप्तमी चाभिरूद्गता।

षड्जग्रामाश्रिता एता विज्ञेयाः सप्त मूर्च्छनाः।।[115]

अर्थात् 1. उत्तरमन्द्रा, 2. रजनी, 3. उत्तरायता, 4. शुद्धषड्जा, 5. मत्सरीकृता, 6. अश्वक्रांता, 7. अभिरूद्गता।

मध्यम ग्राम की भी 7 मूर्च्छनाएं इस प्रकार हैं–

सौविरि हरिणाश्वा च स्यात् कलोपनता तथा।

चतुर्थी शुद्धमध्या तु मार्गवी पौरवी तथा।।

हृष्का चैव विज्ञेया सप्तमी द्विजसत्तमाः।

मध्यमग्रामजा ह्येताः विज्ञेयाः सप्तमूर्च्छना।।[116]

अर्थात् 1. सौवीरी, 2. हरिणाश्वा, 3. कलोपनता, 4. शुद्ध मध्या, 5. मार्गवी, 6. पौरवी तथा 7. हृष्यका।

जाति

भरत ने स्वयं जाति की कोई परिभाषा नहीं दी है। परन्तु अभिनवगुप्त ने जाति की परिभाषा इस प्रकार दी है–

स्वरा एवं सन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयं च जनयनतो जातिरित्युक्ताः।

कोऽसौ सन्निवेश इति चेज्जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः।[117]

---

[115] वही – पृ. 18

[116] वही – पृ. 19

[117] भारतीय संगीत का इतिहास – ठाकुर जयदेव सिंह – पृ. 363

अर्थात् विशेष स्वर ही विशेष सन्निवेश से युक्त होकर रंजकत्व को उत्पन्न कर, अदृष्ट और अभ्युदय फल देते हुए 'जाति' कहे जाते हैं। 'सन्निवेश' क्या है? जाति के जो लक्षण हैं, उन्हीं से सन्निवेश का आशय समझा जा सकताहै। जातियों की संख्या 18 बताई गई है तथा इसके दस लक्षण भी इस प्रकार दिये गए है- ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व बहुत्व, षाड्व, औड्व।

वर्ण ***शारीरस्वर सम्भूतस्त्रिस्थानगुणगोचराः।***

चत्वारो लक्षणोपेताः वर्णा ह्येते प्रक्रीर्तिताः॥

अर्थात् शरीर से उत्पन्न होने वाले तथा तीन स्थानों (हृदय, कंठ और मस्तक) से अपने स्वरूपगत गुणों के प्रकट करने वाले चार लक्षणों से युक्त रहने वाले 'वर्ण' कहलाते हैं। इसके चार प्रकार इस तरह हैं- आरोही, अवरोही, स्थायी तथा संचारी।

अलंकार

संगीत में अलंकार का महत्व इस प्रकार से नाट्यशास्त्र में है-

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।

अविभूषितेव च स्त्री गीतिरलङ्कारहीन स्यात्॥[118]

अर्थात् जैसे चन्द्रहीन रात्रि जल से हीन नदी, पुष्प से हीन लता और अलंकारों से हीन नारी सुशोभित नहीं होती वैसे ही अलंकारों से हीन 'गीति' भी सुशोभित नहीं होती है।

गीति

भरत के अनुसार गीतियाँ का अन्तर्भाव गांधर्व के अन्तर्गत है-

प्रथमा मागधी ज्ञेया द्वितीया त्वर्धमागधी।

सम्भाविता तृतीया च चतुर्थी पृथुला स्मृता॥[119]

(परम्परा के अनुसार) गीति के चार भेद होते हैं-

1. मागधी, 2. अर्धमागधी, 3. सम्भाविता तथा 4. पृथुला।

---

[118] नाट्य शास्त्र - संपादक - M. Ramakrishna Kavi - पृ. 92

[119] नाट्यशास्त्र - सम्पादक - श्री बाबू लाल शुक्ल 'शास्त्री' - पृ. 79

ध्रुवा गीत

भरत के अनुसार–

या ऋचः पाणिका गाथा सप्तरूपाङ्गमेव च।

सप्तरूपप्रमाणं हि सा ध्रुवत्यभिसंज्ञिता।।[120]

अर्थात् जो ऋक, पाणिका, गाथा और सप्तगीत है एवं जिनका सात भिन्न प्रमाणों में स्वरूप होता है– ये सभी ध्रुवा कहलाते हैं।

भरतकालीन ध्रुवा गीत शब्द– संगीत तथा काव्य– संगीत के श्रेष्ठ निदर्शन हैं। इन गीतों का उद्देश्य अर्थाभिव्यक्ति था, इस कारण इनका गान ऐसे प्रसंगों पर किया जाता था, जहाँ उसे उद्देश्यपूर्ति के लिए अनुकूल वातावरण हो। इसी कारण रूदन, संभ्रम, उत्पात इत्यादि प्रसंगों पर ध्रुवा गान उपयुक्त माना गया है।[121]

नाट्य के अन्तर्गत स्थान तथा प्रयोजन की दृष्टि से महर्षि ने ध्रुवाओं का पंचविध वर्गीकरण किया है। ये पाँच वर्ग हैं– प्रावेशिकी, नैष्क्रामिकी, आक्षेपिकी, प्रसादिकी व अन्तरा।[122]

वाद्य

भरत के नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय के प्रथम श्लोक में अतोद्य के चार प्रकार बताये हैं–

ततञ्चैवावनद्धञ्च घनं सुषिरमेच च।

चतुर्विधन्तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।1।।[123]

अर्थात् 1. तत्, 2. अवनद्ध, 3. धन तथा 4. सुषिर।

---

[120] वही – पृ. 216

[121] संगीत (नाट्य में गांधर्व व ध्रुवा गीतों की भूमिका) – अश्विनी भागवत के लेख से – पृ. 18 (जून 2002)

[122] वही – पृ. 19 (जून 2002)

[123] नाट्यशास्त्र – सम्पादक – बाबूलाल शुक्ल शास्त्री – पृ. 5

अतोद्य का स्वरूप

ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धन्तु पौष्करम्।

घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्चते।।[124]

अर्थात् वीणा आदि 'तत', पीटे जाने वाले पुष्कर (मृदंग) आदि 'अवनद्ध', कांसी आदि धातुओं से बने हुए तालार्थ वाद्य 'धन' तथा 'फूँक कर हवा भरते हुए बजने वाले (बांसुरी आदि) 'सुषिर' वाद्य कहलाते हैं।

भरत ने चतुर्विध वाद्यों में विपञ्ची वीणा, बांसुरी, मृदंग, पणव, दर्दुर आदि वाद्यों का वर्णन नाट्यशास्त्र में किया है। नाट्यशास्त्र में वाद्य वृन्द के लिए 'कुतुप' संज्ञा दी गई है।

ताल

तालो घन इति प्रोक्तः कला-पात-लयान्वितः।

कलास्तस्य प्रमाणं वैविज्ञेयं तालयोक्तृभिः।।[125]

अर्थात् कला, पात और लय से युक्त जो काल का विभाग या परिणात्मक प्रमाण जो घन वाद्य के वर्ग में आता है- 'ताल' कहलाता है। संगीत के (प्रयोग के) अवसर पर जब 'ताल' का व्यवहार होता है तो उसे समय का परिमापक 'कला' शब्द कहा जाता है ओर तब इसका अर्थ भी ताल का प्रमाणनिदर्शक काल होता है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार प्राचीन काल में निम्न तालों का प्रचलन रहा है- चच्चतपुट, चापपुट, षड्पितापुत्रक, सम्पर्कष्टाक तथा उद्घट्ट। ताल दो प्रकार की बतालाई गई है- सशब्द तथा निशब्द। ताल दर्शाने के लिए प्रत्येक अक्षर पर हस्तक्रिया को किस प्रकार किया जाता था- इसका विवरण नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है।[126]

---

[124] वही - पृ. 5

[125] वही - पृ. 109

[126] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - स्वतंत्र शर्मा - पृ. 40

रसकल्पना

भरत ने रस की संख्या 8 बताई है– श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स तथा अद्‌भुत। इन रसों के साथ स्वरों का संबंध जोड़ा है। विभिन्न स्वरों से विभिन्न प्रकार के रस की निष्पत्ति होती है– 'हास्य और श्रृंगार में मध्यम और पंचम को अपनाया जाता है। वीर, रौद्र और अद्‌भुत में षड्‌ज तथा ऋषभ को करूण रस में गांधार को और निषाद तथा भयानक और बीभत्स में धैवत।[127]

इस प्रकार नाट्‌यशास्त्र को आज भारत वर्ष की सभी संगीत परम्पराओं में गांधर्ववेद के समान प्राणभूत माना जाता है। साहित्य तथा संगीत में इस निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में इस ग्रंथ की बहुत बड़ी देन है। भरत की धारणा थी कि संगीत का अंतिम लक्ष्य रसानुभूति है। जो संगीत श्रोताओं को रस मग्न नहीं कर सकता वह संगीत ही नहीं।

भरत

भरत द्वारा लिखित नाट्‌यशास्त्र जो कि सर्वविदित है। भरत के विषय में यह समझ लेना उचित है कि 'यह कौन थे'? क्योंकि नाट्‌यशास्त्र के रचनाकाल की तरह ही इसके रचयिता (भरत) के बारे में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है।

भरत के विषय में यह जानकारी प्राप्त करना कठिन सा प्रतीत होता है कि नाट्‌यशास्त्र के रचयिता (भरत) एक है अथवा अनेक। जो विद्वान किसी एक विशेष व्यक्ति को मानते हैं, वे उस कर्ता का परिचय देते हैं। यदि वह जातिगत भरत है तो इसकी जाति का परिचय देते है। यह भरत कोई ऐतिहासिक व्यक्ति है या पौराणिक? विद्वानों ने विभिन्न तरह से समझाने की कोशिश की है।

'नाट्‌यशास्त्रीय ग्रंथों में प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भरत के पूर्व भी नाट्‌याचार्यों की एक परम्परा विद्यमान रही है। भरत ने स्वयं नाट्‌यशास्त्र में विभन्न प्रसङ्गों में अनेक नाट्‌याचार्यों का उल्लेख किया है। नाट्‌यशास्त्र में नाट्‌योत्पत्ति एवं नाट्‌यप्रयोग के प्रसंग में ब्रह्मा, शिव, पार्वती, स्वाति, नारद, कोहल, वात्स्य, शाण्डिल्य, धूत्तिल (दत्तिल), करणों एवं अङ्गहारों के निरूपण के प्रसंग में तण्डु एवं नन्दी तथा अन्य प्रसंगों में कश्यप, बृहस्पति, नखकुट – अश्मकुट्‌ट, वादरायण,

[127] नाट्‌यशास्त्र – सम्पादक – आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी – पृ. 87

शार्तिकर्णी आदि आचार्यों का नाट्य-शास्त्रप्रणेता एवं नाट्याचार्य के रूप में उल्लेख किया है। नाट्य शास्त्र में कुछ आनुवंश्य श्लोक एवं आर्याएँ भी प्राप्त है। आनुवंश्य का अर्थ है- वंश परम्परा से प्राप्त।[128]

नाट्यशास्त्र का रचयिता राजा दुष्यन्त का पुत्र भरत रहा है। इस बात को कोई विद्वान नहीं मानता। अमरकोश के अनुसार भरत शब्द नट के अर्थ में प्रयुक्त होता चला आ रहा है। अमरकोश ने 'भरत' को 'नट' का पर्यायवाची शब्द माना है।[129]

मिताक्षरी व्याख्या में 'भरत' का स्पष्ट अर्थ किया गया है- 'नट' (भरतोनटः) याज्ञवलक्य कहते हैं कि जैसे नट (राम, रावण इत्यादि के) नाना रूपों का धारण करते हुए अपने शरीर को भिन्न-भिन्न रंगों से रंग लेता है; वही आत्मा अपने कर्म से उत्पन्न हुए भिन्न-भिन्न शरीरों को धारण कर लेता है।[130]

भरत गुप्त के अनुसार- भरत की परम्परा भले ही हो, जैसा कि कोश और शारदातनय हमें विश्वास दिलाते हैं फिर भी भरतों, नटों के पहले के मुनि पर विश्वास करने का कारण है। इस मुनि के नाट्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद रंगमंच के व्यवसायिकों को 'भरत' नाम दिया।[131]

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के अनुसार- परम्परा कहती है कि नाट्य के आद्य उद्भावक भरत है, पर ये भरत हैं कौन और कहाँ से इनका सम्बन्ध है- यह गवेशणा का विषय है। यों प्राचीन साहित्य में 'भरत' का विभिन्न रूपों में उल्लेख मिलता है। एक ताक वैदिक युग की भरत जाति ही थी। इस नाम से एक वैदिक कबीला ही जाना जाता है। एक दुष्यन्त-शकुन्तला का पुत्र भरत हो गया है, जो प्रथम सार्वभौम राजाथा। एक भरत नाट्यशास्त्र-प्रणेता के रूप में परम्परा में विश्रुत है और अन्ततः नाट्यशास्त्र में नट के रूप में भी 'भरत' संज्ञा का प्रयोग उपलब्ध है।[132]

---

[128] नाट्य शास्त्र का इतिहास- डॉ. पारस नाथ द्विवेदी - पृ. 11

[129] भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह - पृ. 279

[130] वही - 281

[131] संगीत (नाट्यशास्त्र का काल) भरत गुप्त के लेख से - पृ. 14 (जून 2004)

[132] वही - (नाट्यशास्त्र और भरतकाल निर्धारण के प्रयास) - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के लेख से पृ.

नाट्यशास्त्र के सम्पादक आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि नाट्यशास्त्र में जिन विषयों का उपदेश है उनका समन्वित सूत्र है- भ+र+त। यह एक प्रकार से मन्त्र भी है। यह अनुष्ठान एक अनुवांशिक अनुष्ठान है, जिसका अपना आगम और अपना विधान है। इस वंश का भी नाम है। भरत वंश। भरत नट की भी संज्ञा है, अतः भरत वंश ही नट वंश कहलाता है। भरत मन्त्र में 'भ' का विषय है- भाव, 'र' का विषय राग या रस तथा 'त' का ताल। भाव और रस में सम्पूर्ण काव्य आ गया तथा 'राग' तथा ताल में संगीत एवं नाट्य।[133] वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि भरत जनपद के रहने वाले सभी के लिए प्रयुक्त होता था। इसमें तो संदेह नहीं कि भरत वंश वाले भी सभी भरत कहलाते थे, किन्तु भरत एक अत्यन्त प्राचीन व्यक्ति का नाम भी है।[134]

क्षीर स्वामी ने भी अपनी अमरकोश की टीका में नट के अर्थ में 'भरत' शब्द की व्युत्पत्ति इससे मिलती जुलती दी है- *भरतस्य अपत्यम् 'भरतः'।* अर्थात् भरत का पुत्र या वंशज भी भरत कहलाता है। वस्तुतः भरत के शिष्या उनके पुत्र कहलाते थे। शिष्य भी मानसपुत्र है। प्राचीन समय में शिष्य को भी पुत्र कहते थे।[135]

आद्यरंगाचार्य का पक्ष है कि नाट्यशास्त्र का सम्बन्ध परम्परा में भरत मुनि से जोड़ा गया है। पर मुनि का व्यक्तिगत विवरण कहीं नहीं मिलता। यह भी स्पष्ट नहीं होता कि नाट्यशास्त्र का भरतव्यक्तिवाचक है या जाति वाचक। नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि यह वृत्ति आद्यन्त एक व्यक्ति की रचना है या अनेक व्यक्तियों की, एक समय की रचना है या विभिन्न कालों की। दूसरी बात यह है कि भरत नाट्य के प्राचीन आचार्य है, पर नाट्यशास्त्र में नृत्य और संगीत को इतना महत्व दिया गया है कि इस ग्रंथ का नाम 'नाट्यशास्त्र' रखा जाना भी संगति की अपेक्षा करने लगता है।[136]

---

25 (फरवरी 2005)

[133] नाट्यशास्त्र - खण्ड-1 - सम्पादक आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी - पृ. 1

[134] भारतीय संगीत का इतिहास - ठाकुर जयदेव सिंह - पृ. 288

[135] वही - पृ. 281

[136] संगीत (नाट्यशास्त्र और भरत काल : निर्धारण के प्रयास) - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के लेख से-

प्राचीन भारतीय साहित्य में 'भरत' शब्द जातिवाचक रहा है। वैदिक काल में भरतों की वंश परम्परा विद्यमान थी। सम्भव है इसी वंश-परम्परा में भरत नामक कोई व्यक्ति रहा हो, जिसका नाट्य से सम्बन्ध रहा हो और जिसने नटसूत्रों की रचना की हो।[137] नाट्य शास्त्र में भी भरतों के वंश का उल्लेख है- *भरतानां च वंशोऽयं भविष्यं च।*[138]

आदि भरत या वृद्ध भरत

भारतीय नाट्य-परम्परा में आदि भरतका महत्वपूर्ण स्थान है। नाट्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने नाट्यवेद की रचना कर भरत को नाट्य की शिक्षा देकर उन्हें नाट्य-प्रयोग के लिए निर्देश दिया था। भागवत एवं विष्णुपुराण के अनुसार भरत मनुवंशीय राजा ऋषभदेव के पुत्र थे। वे ब्रह्मावर्त से वैशाली पुलहाश्रम में चले गए थे और वहाँ से दक्षिण कर्नाटक चले गए। वहीं पर उन्होंने नाट्यशास्त्र की रचना की थी। इसलिए आज भी कर्नाटक नृत्य 'भरतनाट्यम' के नाम से प्रसिद्ध है। वे भरतों के आदि (प्रथम) पुरुष थे। इसलिए वे आदिभरत या वृद्धभरत कहलाये।[139] अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्यशास्त्र का प्रथम प्रणयन सदाशिव, ब्रह्मा तथा अन्त में भरत ने किया था।[140] प्रो. रामकृष्ण कवि का कहना है कि वे सदाशिव भरत ही आदि भरत थे।[141]

दत्तिलम

दत्तिल द्वारा रचित ग्रंथ का नाम 'दत्तिलम्' है। इस ग्रंथ में उस समय के संगीत शास्त्र का सुविस्तृत वर्णन दिया गया है। श्रीपद बन्धोपाध्याय कहते है- 'नाट्य शास्त्र और दत्तिलम मध्य की कोई भी रचना संगीत पर नहीं है। अतः संगीत शास्त्र पर यह एक प्राचीन प्रमाणिक ग्रंथ है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि

पृ. 26-27 (फरवरी 2004)

[137] नाट्य शास्त्र का इतिहास - डॉ. पारस नाथ द्विवेदी - पृ. 29

[138] वही - पृ. 29

[139] वही - पृ. 32

[140] वही - पृ. 32

[141] वही - पृ. 32

दत्तिल ने नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत के उल्लेखों पर सुविस्तृत वर्णन देकर संगीत क्षेत्र का महान उपकार किया जिसे समग्र भारत के संगीत प्रेमियों ने अपनाया है।[142]

'दत्तिलम्' संगीत का एक छोटा सा ग्रंथ है। इस ग्रंथ में गांधर्वों का वर्णन पूर्व आचार्यों के अनुसार ही किया है। दत्तिल ने अपने ग्रंथ में नारद, विशाखिल, कोहल तथा समकालीन मनीषियों की चर्चा की है।[143]

ग्रंथ के प्रथम श्लोक में उन्होंने (दत्तिल) परमात्मा और गुरु को नमन् किया है–

(प्रणम्य परमेशानं) ब्रह्माद्यांश्च गुरूंस्तथा।

गान्धर्वशास्त्रसंक्षेपः सारतोऽयं मयोच्यते।।1।।[144]

परमात्मा को (ईशान–शंकर जी) तथा ब्रह्मादि देवताओं एवं गुरुओं को प्रणाम करके यह गांधर्व शास्त्र का संक्षेप सार रूप से मैं कह रहा हूँ।

आचार्य दत्तिल गांधर्व के विषय में कहते हैं–

गान्धर्वं नारदादिभ्यः प्रत्त्यमादौ स्वयम्भुवा।

विधिवन्नारदेनाथ पृथिव्यामवतारितम्।।2।।[145]

'नारदादि आचार्यों ने जिस गांधर्व को पितामह से प्राप्त किया था उसे नारद ने पृथ्वी में अवतरित किया।

पदस्थस्वरसंघातस्तालेन सुमितस्तथा।

प्रयुक्तश्चावधानेन गांधर्वमभिधीयते।।3।।[146]

अर्थात् पदों में स्थित स्वरों का संघात जब कि वह ताल के द्वारा नियमित

---

[142] संगीत का विकास और विभूतियाँ – श्रीपद बन्धोपाध्याय – पृ. 35

[143] संगीत युगे-युगे – तज्जमुल खाँ – पृ. 61

[144] दत्तिलम – टीकाकार – कलिंद – पृ. 9

[145] वही – पृ. 9

[146] वही – पृ. 9

रूप से प्रयुक्त होता है, तब उस प्रयोग के नामकरण में 'गंधर्व' ऐसा बोला जाता है।

श्रुतयोऽथ स्वरा ग्रामौ मूर्च्छनास्तानसंयुताः।

स्थानानि वृत्तयश्चैव शुष्कं साधारणे तथा॥6॥[147]

अर्थात् श्रुतियाँ और स्वर दो ग्राम (1. षड्ज, 2. मध्यम पहिले जिसे स्वर 'सा' बनाकर गाते रहे वही षड्ज ग्राम, पीछे उसके मध्यम को 'सा' बना लिया? प्रायः ऐसी बंदिशों में जिन मन्द्र के स्वर अधिक प्रयुक्त होते हैं, उनमें लोग ऐसा ही करते हैं) तीसरे 'गान्धारग्राम' के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने लिखा है- जब मध्यम में षड्ज की कल्पना की, तो पहिले षड्ज ग्राम का जो धैवत था, वह गांधार बना। पीछे इसी गांधार को स्वर 'सा' बना लिया तो 'गांधार-ग्राम' नाम पड़ा?

श्री भगवत शरण शर्मा कहते हैं दत्तिलम् में षड्ज तथा मध्यम ग्राम का उल्लेख मिलता है। गांधार ग्राम के बारे में कहते हैं कि वह इस लोक में प्राप्त नहीं होता।[148] फिर वादी-संवादी, अनुवादी और विवादी स्वरों को बताकर, षड्ज ग्राम की सातों मूर्च्छनाओं (उत्तरमन्दा, रजनी आदि) का नाम देकर मध्यम ग्राम (सौवेरी, हर्णाश्रवा आदि) का वर्णन किया है। इसके पश्चात् षाड्व-औडव मूर्च्छनाओं का क्रम बताया है। आगे प्रवेश व निग्रह के द्वारा तान-रचना तथा कूट तानों की रचना का क्रम बताया गया है।[149]

डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती कहती हैं कि- दत्तिल के अनुसार मूर्च्छना को वैणिक द्वारा 'सारणा' भी कहा जाता है। जिससे (वीणा पर) मूर्च्छनादि की स्थापना की जाती है। यहाँ पर मूर्च्छना का दो बार प्रयोग हुआ है- वीणा को मिलाने यानी 'सारणा' करने और उस मिली हुई वीणा पर मूर्च्छना को स्थापित करने के अर्थ में, दत्तिल के शब्दों में-

---

[147] वही - पृ. 9

[148] संगीत ग्रंथसार - भगवत शरण शर्मा - पृ. 68

[149] वही - पृ. 68

इत्येता मूर्च्छनाः प्रोक्ताः सारणाश्चैव वैशिकैः (वैणिकैः?)

संस्थाप्य मूर्च्छनामेवंचान्या वक्ष्यानुगः (?) क्रमः।।[150]

बृहद्देशी में मतङ्ग, भरत भाष्यम् में नान्यदेव एवं दत्तिलम् में दत्तिल भी मूर्च्छना के चार भेद–पूर्णा, षाडवा, औडवा और काकलीअंतर स्वरों से युक्त साधारणा को स्वीकार करते हैं। जैसे–

'पञ्चस्वराः षटस्वराश्च मूर्च्छना या प्रकीर्तिताः।[151]

आचार्य दत्तिल के अनुसार जातियाँ 18 होती है। ना.शा. का इतिहास पृ. 80 ने स्पष्ट जातियों के तीन भेदों का वर्णन किया है–

'शुद्धा श्च विकृता श्चैव शेषास्तत्सङ्करोद्भवाः।।48।।[152]

अर्थात् शुद्ध, विकृत एवं संकरोद्भव (दो या दो से अधिक जातियों से निर्मित)।

संकर जातियों की बहुल संख्या का निर्देश 'दत्तिलम' में मिलता है– ***'संकरं रूपबाहुल्यं जाति निर्देश इष्यते'।***[153]

वादी स्वर के लिए दत्तिलाचार्य ने कहा है– जो अत्यन्त प्रयुक्त अर्थात् जिसकी अधिकता होती है वही वादी अर्थात् अंश कहलाता है।[154]

आचार्य दत्तिल कहते हैं– ***'तालात् साम्यं भवेत् साम्यादिह सिद्धिः।'*** अर्थात् ताल के द्वारा गायन–वादन–नर्त्तन में समता की स्थापना होती है और श्रोतृरंजकत्व की सिद्धि होती है।[155]

डॉ. पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार– 'दत्तिल ने ताल क्रिया के सात भेद बताये हैं– आवाप, निष्क्राम, विक्षेप, प्रवेशन, शम्या, ताल और सन्निपात। इनमें हाथ को

---

[150] संगीत मंजुषा – डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती – पृ. 130

[151] भारतीय संगीत शास्त्र – तुलसीराम देवांगन – पृ. 110

[152] वही – पृ. 140

[153] वही – पृ. 140

[154] वही – पृ. 143

[155] वही – पृ. 173

उत्तान कर अंगुलियों का आकुञ्चन 'आवाप-क्रिया' है और हाथ को अधोमुख करके अंगुलियों को फैलाना 'निष्क्राम' कहा जाता है। हाथ को दाहिनी ओर फेंकना 'विक्षेप' ओर हाथ को नीचे की ओर ले जाकर अंगुलियों का आकुञ्चन (सिकोड़ना) 'प्रवेश' है। दोनों हाथों का एक साथ पात करना अर्थात् दोनों हाथ से ताली बजाना 'सन्निपात' क्रिया है। दत्तिल ने ध्रुव क्रिया को स्वीकार नहीं किया है। दत्तिल के अनुसार त्र्यसुताल 'चञ्चत्पुट' और चतुरस्त्रताल 'चाचपुट' कहलाता है।[156]

दत्तिल

दत्तिल के नाम से 'दत्तिलम्' नामक कृति संगीत विषय पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। विभिन्न ग्रंथकारों ने दत्तिल के बारे में भिन्न-भिन्न तरह से वर्णन अपने-अपने ग्रंथों में किया है।

अभिनवगुप्त ने अपनी ''अभिनव भारती'' पुस्तक में दत्तिल मुनि को उस समय का प्रमुख शास्त्रवेत्ता स्वीकार किया है।[157]

तज्जमुल खाँ के अनुसार- ''नाट्यशास्त्र के कुछ समय बाद महर्षि भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा ''दत्तिलम'' ग्रंथ की रचना हुई। यह संगीत का एक छोटा सा ग्रंथ है। इस ग्रंथ में गांधर्वों का वर्णन पूर्व आचार्यों के अनुसार ही किया है। दत्तिल ने अपने ग्रंथ में नारद, विशाखिल, कोहल तथा समकालीन मनीषियों की चर्चा की है।''[158]

भारतीय नाट्य एवं संगीत परम्परा के आचार्यों में कोहल के साथ दत्तिल का नाम अन्यतम है। दत्तिल एक भरत थे। नाट्य शास्त्र के प्रणेताओं में जिन पाँच भरतों का नाम आता है उनमें दत्तिल भी एक था। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतपुत्रों में दत्तिल का उल्लेख है।[159]

'भारतीय संगीत का इतिहास' में डॉ. परांजपे ने दत्तिल के बारे में

---

[156] नाट्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 80

[157] संगीत का विकास और विभूतियाँ - श्रीपद बन्धोपाध्याय - पृ. 35

[158] संगीत युगे-युगे - तज्जमुल खां - पृ. 61

[159] नाट्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 75

भिन्न-भिन्न शास्त्रकारों का मत प्रस्तुत किया है- ई. 17 की 'संगीत सुधा' में दत्तिल का संगीत शास्त्र के रूप में उल्लेख है। ई. 14 के 'रसार्णवसु धाकर' में भरत तथा कोहल के साथ उनका निर्देश नाट्यशास्त्रकार के रूप में उपलब्ध है। प्राय: समकालीन 'रसरत्नप्रदीपिका' में संगीत शास्त्र के प्रमाणभूत आचार्यों में उनकी गणना है। ई. 13 के 'संगीत समयसार' में दत्तिल का उल्लेख ताल शास्त्र के प्रवक्ता के रूप में हुआ है।[160] शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर में कोहल, कश्यप, विशाखिल आदि प्राचीन आचार्यों के साथ दत्तिल का एक आचार्य के रूप में उल्लेख किया है।[161]

संगीत कार्यालय, हाथरस के प्रकाशक डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग कहते हैं। ''पांचवी शताब्दी के बाद के बहुत से विद्वानों ने इस ग्रंथकार के नाम का उल्लेख किया है; परन्तु यह लेखक कब और कहाँ पैदा हुआ? इस विषय पर कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। इस ग्रंथकार ने अपने पूर्वकालीन लेखक नारद, कोहल और विशाखिल के नामों का उल्लेख किया है, लेकिन इन लोगों का समय नहीं दिया अत: दत्तिल का काल भी निश्चित नहीं किया जा सकता।[162]

दत्तिल के विषय में आचार्य कैलाश चन्द्र बृहस्पति जी का निम्न विचार है- 'नाट्यशास्त्र के अनुसार ये महर्षि भरत के पुत्र थे। इन्हें गांधर्वशास्त्र के संक्षेप का कर्ता कहा जाता है। रत्नाकर के टीकाकार सिंहभूपाल ने अनेक स्थानों पर इनका मत उद्धृत किया है। दत्तिल ने मूर्च्छना के चार भेद- पूर्णा, षाड्वा, औडुविता और साधारणी माने हैं, इस सम्बन्ध में मतङ्ग ने भी दत्तिल का अनुसरण किया है। प्रथम शती ई. के एक शिलालेख में दत्तिल की चर्चा है।'[163]

बृहद्देशी

मतङ्ग का एक मात्र ग्रंथ 'बृहद्देशी' अपूर्ण उपलब्ध है। इस ग्रंथ का प्रकाशन त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज से 1928 ई. में हुआ है। इस ग्रंथ में कुल आठ

---

[160] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे - पृ. 170

[161] नाट्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 77

[162] हमारे संगीत रत्न - डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग - पृ. 18

[163] भरत का संगीत - सिद्धान्त - आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति - पृ. 293

अध्याय है, किन्तु सम्प्रति उपलब्ध बृहद्देशी में कुल छः अध्याय है और वह भी अपूर्णावस्था में।[164] राम कृष्ण कवि के अनुसार इस ग्रंथ में छः हजार श्लोक होने चाहिए, किन्तु उपलब्ध ग्रंथ में इतने श्लोक नहीं मिलते। इससे ग्रंथ की अपूर्णता की पुष्टि होती है। परवर्ती सभी आचार्यों ने मतङ्ग के मत का सम्मान पूर्वक उल्लेख किया है।[165]

बृहद्देशी के प्रथम अध्याय के देशी प्रकरण में इस ग्रंथ की विशेषता बतलाई है–

''देशे-देशे प्रवृत्तोऽसौ ध्वनिर्देशीति संज्ञितः।''[166]

अर्थात् भिन्न-भिन्न देशों एवं स्थानों में ध्वनि फैलती है एवं प्रवृत्त होती है, इसलिए यह 'बृहद्देशी' कहलाती है। स्त्रियाँ, बाल गोपाल और राजा-महाराजा अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने देश में जिसे अनुराग सहित गाते हैं, वह 'देशी' है–

अबलाबालगोपालैः क्षिति पालैर्निजेच्छया।

गीयते यानुरागेण स्वदेशे देशिरूच्यते॥[167]

मतंग ने नाद महिमा बताते हुए इस ग्रंथ में नृत्य का नाम भी बताया है–

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वराः।

न नादेन बिना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत्॥18॥[168]

There is no gīta (song, music) without nāda, there are no suaras (musical notes) without nāda, there is no nrtta (dance) without nāda, hence the world is

---

[164] नाट्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 82

[165] वही - पृ. 82

[166] बृहद्देशी - संपादक - प्रेमलता शर्मा - पृ. 2

[167] वही - पृ. 4

[168] वही - पृ. 6

of the essence of nāda.

मतंग के अनुसार नाद के पाँच भेद होते हैं- सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त और कृत्रिम-

नादोऽयं नदतेर्धातोः स च पञ्चविधो भवेत्।

सूक्ष्मश्चैवातिसूक्ष्मश्च व्यक्तोऽव्यक्तश्च कृत्रिमः।।21।।[169]

मतंग ने ग्राम की परिभाषा इस प्रकार दी है-

समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादि संयुतौ।

यथा कुटुम्बिनः सर्व एकीभूत्वा वसन्ति हि।।

सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्यं व्यवस्थितः।

षड्जमध्यसंज्ञौ तु द्वौ ग्रामो विश्रुतौ किल।।[170]

अर्थात् स्वर, श्रुति आदि का समूहवाची नाम ग्राम है। जिस प्रकार अनेक कुटुम्ब एक गाँव में एकत्र होकर रहते हैं, उसी प्रकार स्वरों के एकत्र होने से ग्राम बनता है। संगीत में ऐसे दो ग्राम हैं- षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम।

'राग' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में (बृहद्देशी में) विद्वानों ने बतलाया है।

बृहदेशी में मतंग द्वारा दी गई परिभाषा आज उसी प्रकार विख्यात और प्रचलित है जिस प्रकार उनके युग में थी। ये परिभाषा इस प्रकार है-

योऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।

रंजको जन चित्तानां स च राग उदाहृत।।[171]

अर्थात् ध्वनि की वह विशेष रचना जो स्वर और वर्ण से विभूषित हों और

---

[169] बृहद्देशी - संपादक - प्रेमलता शर्मा - पृ. 8

[170] बागेश्वरी - डॉ. अलका नागपाल के लेख से - पृ. 16 (2005)

[171] भारतीय संगीत सरिता - डॉ. रमा सर्राफ - पृ. 50

जो जन के चित्त का रंजन कर सके उसे 'राग' कहते हैं।

आचार्य मतंग ने 'जाति' को राग की जननी कहा है–

''सकलस्य रागादेर्जन्महेतुत्वाज्जातयः इति''[172]

मूर्च्छना – मतङ्ग ने मूर्च्छना द्विविध बताई है– 'सप्तस्वर' एवं 'द्वादशस्वर'। 'सप्तस्वर' मूर्च्छनाएं उन्होंने चतुर्विध बताई है– पूर्णा, षाडवा, औडुविता और साधारण। जो सात स्वर से गाई जाती हो, वह 'पूर्ण' जो छः स्वरों से गाई जाती हो, वह 'षाडव', जो पाँच स्वरों से गाई जाती हो, वह 'औडुव' ओर जो काकली निषाद एवं अन्तर गांधार से युक्त करके गाई जाती हो, वह 'साधारण' है–

सा च मूर्च्छना द्विविधा सप्तस्वरमूर्च्छना द्वादशस्वरमूर्च्छना चेति।

तत्र सप्तस्वरमूर्च्छना चतुर्विधा पूर्णा, षाडवा औडुविता साधारणी चेति।

तत्र सप्तभिः स्वरैर्या गीयते सा पूर्णा। षड्भिः स्वरैर्या गीयते सा षाडवा।

पञ्चभि स्वरैर्या गीयते सा औडुविता। काकल्यन्तरैः स्वरैर्या गीयते सा साधारण।[173]

मूर्च्छना का लक्षण इस प्रकार बताया गया है–

आरोहणावरोहणक्रमेण स्वर सप्तकम्।

मूर्च्छनाशब्दच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः।।[174]

अर्थात् ''आरोहावरोह–क्रम से प्रयुज्यमान स्वर सप्तक को बुद्धिमानों के द्वारा 'मूर्च्छना' समझा जाना चाहिए।''

संगीत के अतिरिक्त शैली विशेष को भी 'गान' की संज्ञा दी गई। ये निबद्ध तथा अनिबद्ध के नाम से जाने जाते है। डॉ. परांजपे ने बृहदेशी के श्लोकों की व्याख्या इस प्रकार की है–

---

[172] बागेश्वरी – प्रो. उमा गर्ग के लेख से – पृ. 29

[173] संगीत चिन्तामणि – आचार्य बृहस्पति – पृ. 65

[174] वही – पृ. 65

''निबद्ध देशी, जो आलापादि नियमों से नियन्त्रित रहता है तथा अनिबद्ध देशी वह है जिसमें गान, नियमों से नियन्त्रित न होकर स्वच्छन्द रूप से किया जाता है। इनमें से प्रथम को शास्त्रीय कहा जाता है तथा दूसरा विशुद्ध सरल संगीत के नाम से व्यवहृत होता है जो सदैव कामचार प्रवर्तित हुआ करता है।[175]

अलंकार के विषय में सिंहभूपाल ने मतंग के दिए गए लक्षण को भी उद्धृत किया है-

अलंकार शब्देन मंडनमुच्यते। यथा कटकके

यूरादिनाऽलंकारेण नारी पुरुषो वा मंडित

शोभाया व हेत्तथैगैरलंकारैः प्रसन्नादिभिरलंकृता

वर्णात्तया गीतिगातृच्वोतृणा सुखावहा भवनीति।[176]

संक्षेप में वर्णों के आश्रित अलंकार गीत, गायक एवं श्रोता को सुख देने में समर्थ हैं।

मूर्च्छना का प्रयोजन व द्वादशस्वरीय मूर्च्छना- मतंगाचार्या ने मूर्च्छना के दो प्रकारों का उल्लेख सप्तस्वरीय और द्वादशस्वरीय के रूप में किया है।[177]

देवांगन जी के अनुसार- मतंगाचार्य ने बृहद्देशी में तानों के यज्ञ नाम का वर्णन किया है। षड्जहीन तानों के नाम अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय, षोडशी, पुण्डरीक, अश्वमेघ और राजसूय कहा गया है। इसी प्रकार षड्जग्रामीय, मध्यमगामीय षाडव औडव तानों के यज्ञ नामों का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है।[178]

मतंग के अनुसार- एक स्वर के 1. दो स्वर के 2. तीन स्वरों के 6, चार स्वरों के 24, पाँच स्वरों के 120, 6 स्वरों के 720, और सप्तस्वरों के 5040 तान है। इन सब तानों का विधान 66 तंत्रियों वाली एवं सौ तंत्रियों वाली वीणाओं में

---

[175] संगीत मंजुषा - डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती - पृ. 39

[176] वही - पृ. 43

[177] भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीराम देवांगन - पृ. 113

[178] वही - पृ. 113

उपलब्ध होता है- *'तदेव मेतेषां स्वरान्तानविधाना षटषष्टितंत्र्यां शततंत्र्यां चोपलभ्यते।*[179]

राग के विषय में यह कहा गया है कि- रंजन के कारण ही राग की संज्ञा ''राग'' है यही राग की व्युत्पत्ति है-

इत्येव रागशब्दस्य व्युत्पत्तिरभिधीयते

रंजनाज्जायते रागो व्युत्पत्तिः समुदाहृतः।[180]

राग शब्द अश्वकर्ण जैसे शब्दों के समान रूढ़ मन्थ इत्यादि शब्दों के समान यौगिक अथवा पंकज शब्द के समान योग रूढ़ है-

अश्वकर्णादिवद्रूढ़ो यौगिको वापि मन्थवत्

योगरूढ़ोऽथवा रागो ज्ञेयः षड्कजशब्दवत्।[181]

सुनंदा पाठक के अनुसार- नाट्य शास्त्र के पश्चात् बृहद्देशी तक कोई अन्य संगीत सम्बन्धी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, किन्तु इस बीच राग का विकास हो चुका था। यह बृहद्देशी में वर्णित रागों से स्पष्ट है यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये सब राग मतंग ने बनाए, क्योंकि मतंग पूर्व तथा भरत पश्चात् ग्रंथकार दत्तिल, कोहल, याष्टिक, दुर्गाशक्ति तथा कश्यप हुए हैं, जिनके मतों का उल्लेख मतंग तथा अन्य पश्चात् कालीन ग्रंथकारों ने किया है। इन विद्वानों द्वारा बताए हुए ग्राम राग, भाषा, विभाषा अन्तर भाषा का वर्णन बृहद्देशी में है।[182]

मतंग के अनुसार गीति के सात प्रकार है- शुद्ध, भिन्ना, गौड़ि, रागगीति, साधारणी, भाषा और विभाषा। इसके बाद भरत के मतानुसार गीति के चार भेदों का वर्णन किया है- मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला।[183]

विद्वानों का मानना है कि महाराणा कुम्भा को मतंग का वाद्याध्याय प्राप्त

---

[179] वही - पृ. 114

[180] हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास - सुनंदा पाठक - पृ. 3

[181] वही - पृ. 3

[182] वही - पृ. 23

[183] नाट्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 84-85

था। इस विषय में डॉ. पारसनाथ द्विवेदी कहते हैं- मतंग की किन्नरी पर चौदह से लेकर अठारह तक सारिकाएँ होती हैं। आजकल वे सभी तन्त्रीवाद्य किन्नरी के विकसित रूप हैं, जिन पर सारिकाएँ विद्यमान हैं। मतंग चित्रावादक थे, इसलिए उन्हें 'चैत्रिक' कहा गया है।[184] वीणा पर स्वर स्थापना कैसे करें, इन सिद्धांतों को दर्शाने वाली वीणा का नाम 'चल वीणा' है। मतंग मुनि ने 'बृहद्देशी' में लिखा है कि *'चलवीणया: प्रथमापकर्षे श्रुतिलाभोनास्ति।'* इस वीणा में श्रुति लाभ नहीं होता है।[185]

मतङ्ग

मतङ्ग संगीतशास्त्र के प्राचीन आचार्य थे। रामायण और महाभारत में मतङ्ग नामक आचार्य का उल्लेख है, किन्तु संगीताचार्य भिन्न प्रतीत होते हैं। कालिदास ने रघुवंश में मतङ्गमुनि की चर्चा की है। तमिल भाषा में प्राप्त 'पञ्चभारतीयम' नामक ग्रंथ में भरत से सम्बन्धित पाँच नामों में 'मतंगभरत' का उल्लेख है। तद्नुसार इनके ग्रंथ में छः हजार श्लोक थे, जिनमें वाद्य और नृत्त भी सम्मिलित था। किन्तु उनका वह ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है। डॉ. सुशील कुमार डे ने लक्षमण भास्कर द्वारा रचित 'मतङ्गभरत' नामक एक ग्रंथ के अस्तित्व का उल्लेख किया है।। जिसमें मतङ्ग के मतों की चर्चा की गयी प्रतीत होती है। राम कृष्ण कवि के अनुसार वे भरत के शिष्य थे। मतंग एक मुनि थे। वे नादशास्त्र, योगशास्त्र, मोक्षशास्त्र एवं संगीत शास्त्र के प्रमाणिक आचार्य माने जाते हैं।[186]

भगवत शरण शर्मा के अनुसार 'नाट्यशास्त्र' सातवी सदी में लिखा गया।[187] डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग के अनुसार- भारतीय संगीत के ग्रंथकारों में मतङ्ग मुनि' का प्रमुख स्थान है। जब श्रुति इनका काल छठी शताब्दी मानती है। प्रो रामकृष्ण कवि के विचार में इनका काल नवमी शती का मध्य भाग है। मतङ्ग के ग्रंथ का नाम 'बृहद्देशी' है, जिसमें आठ अध्याय है; ताल और वाद्य पर भी इस ग्रंथ में विचार

---

[184] वही - पृ. 85

[185] संगीत (वीणा के प्रकार) - रसिकलाल माणिकलाल पंड्या के लेख से - पृ. 24 (फरवरी 1973)

[186] नाट्यशास्त्र का का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 80-81

[187] संगीत ग्रंथ सार - भगवत शरण शर्मा - 75

किया गया है। परवर्ती सभी आचार्यों नें मतङ्ग का मत सम्मान पूर्वक उद्धृत किया है।[188]

योगाचार्य स्वामी कृपाल्वानंद के शब्दों में 'महर्षि मतंग मुनि मूर्च्छना-पद्धति के अन्तिम एवं श्रेष्ठ ज्ञाता थे। उनके पश्चात् मूर्च्छना पद्धति विलुप्त हो गई-कोई ज्ञाता न रहा।"[189]

दामोदर गुप्त ने मतङ्ग को सुषिरवाद्य का महापंडित बताया है। अभिनव भारतीकार अविनवगुप्त का कथन है कि मतङ्ग आदि ने बांस की बनी हुई बांसुरी से भगवान महेश्वर को प्रसन्न किया था।[190] सिंह भूपाल ने मतङ्ग को नाट्य के रचिता भरत के चार पुत्रों में से बताते हैं[191]

संगीत मकरंद

संहिताकार नारद तथा शिक्षाकार नारद के अतिरिक्त एक और नारद नामक व्यक्ति हुए हैं जिनके द्वारा ''संगीत मकरंद'' नामक ग्रंथ की रचना हुई। इस ग्रंथ के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ इतिहासकार संगीत मकरंद का काल 800-1300 शताब्दी मानते हैं। इस ग्रंथ का रचनाकाल 10वीं शताब्दी में मानने वालों की संख्या कम है। अतः 8वीं शताब्दी ही इस ग्रंथ का काल मानना उचित प्रतीत होता है।[192]

संगीत मकरंद में पुरुष राग, स्त्रीराग, नपुंसक राग, राग-वर्गीकरण स्वर, मूर्च्छना का वर्णन, ताल वर्णन, रागों की जाति तथा गायन समय भी दिया गया हैं नाद के भेद तथा वीणा के 18 भेदों का वर्णन इस ग्रंथ की विशेषता हैं संगीत मकरंद में रागों को पुरुष और स्त्री नामों से वर्णित किया गया है।

---

[188] हमारे संगीत रत्न - डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग - पृ. 42

[189] संगीत - (भारतीय प्राचीन जातिगानः एक संशोधन) - योगाचार्य स्वामी कृपाल्वानन्द - पृ.-6 (जून-1981)

[190] नाट्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. पारसनाथ द्विवेदी - पृ. 85

[191] भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - डॉ. स्वतंत्र शर्मा पृ. 47

[192] संगीत युगे-युगे - तज्जमुल खाँ - पृ. 62

'संगीत मकरंद' में संगीत की परिभाषा 'संगीत अध्याय प्रथम पाद' में इस प्रकार दी गई है–

गीत वाद्यं च नृत्य च त्रयं संगीत मुच्यते।

नारदेन कृतं शास्त्रं मकरंदाख्यमुत्तमम्॥3॥[193]

इसी पाद में 'आदौ नादोत्पत्ति निरूप्यते' में नाद के पाँच भेदों के विषय में उल्लेख किया गया है–

सोऽप्याहतः पंचविधो नादस्तु परिकीर्तितः।

नखवायुजचर्माणि लोहशारीरजास्तथा॥7॥[194]

नखं वीणादयः प्रोक्ता वंशाद्या वायुपूरकाः।

चर्माणि च मृदंगाद्या लोहास्तालादयस्तथा॥8॥[195]

अर्थात् 'नखज–ध्वनि' वीणा इत्यादि तार–वाद्यों से उत्पन्न होती है। 'वायुज–ध्वनि' सुषिर वाद्यों से उत्पन्न होती हैं 'चर्मज–ध्वनि' चर्म–वाद्यों से उत्पन्न होती है। 'लोहज–ध्वनि' धातु–वाद्यों से उत्पन्न होती है और 'शरीरज–ध्वनि' प्राणी के कंठ से उत्पन्न होती है और 'शरीरज–ध्वनि' प्राणी के कंठ से उत्पन्न होती है। इस प्रकार ध्वनि के ये पाँच प्रकार 'संगीत–मकरंद' में पाये जाते हैं।

'भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शन परक अनुशील पुस्तक' के अन्तर्गत 'संगीत मकरंद' में वर्णित आहत और अनाहत नाद की महिमा इस प्रकार वर्णित है–

आकाशसंभ्वो नादो यः सोऽनाहतसंक्षितः।

तस्मिन्ननाहते नादे विरामं प्राण्य देवताः॥5॥

योगिनोऽपि महात्मानस्तदाऽनाहतसंज्ञकेः।

मनो निक्षिप्य संयान्ति मुक्तिं प्रयतमानसाः॥6॥[196]

---

[193] संगीत मकरंद – संपादक – लक्ष्मीनारायण गर्ग – पृ. 5

[194] वही – पृ. 5

[195] वही – पृ. 5

[196] भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शन परक अनुशीलन – डॉ. विमला मुसलगाँवकर – पृ. 39

अर्थात् योग साधना करने वाला योगी 'अनाहत-नाद' में तल्लीन होकर ब्रह्मनंद का अनुभव करता है, और संगीत साधना करने वाला गायक योगी 'आहत-नाद' में तल्लीन होकर ब्रह्मानंद का अनुभव करता है। आघात (प्रहार) है और आघातोत्पन्न ध्वनि 'आहत' है। उसकी उपासना गायक-योगी करता है। अनाहत-नाद की साधाना असिधाराव्रत के समान अत्यन्त कठिन है। इस मार्ग को कष्ट साध्य जानकर गायक योगी ने 'आहत-नाद' का आश्रय लिया। अनेक ऋषियों के द्वारा बनाये गये नाद, ध्वनि, वर्ण, पद, वाक्य आदि शब्द के स्वरूपों को अपने उपयुक्त समझकर उसे ही अपनाया। संगीत मकरंद में वर्णित 7 स्वर के नाम इस प्रकार है-

षड्जश्चर्षभगांधारौ मध्यमः पंचमस्तथा।

धैवतश्च निशादश्च स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः।।12।।[197]

अर्थात् सा-रे-ग-म-प-ध-नि ये सात स्वर हैं। इन सप्त स्वरों को ग्रंथकार ने विभिन्न पशु-पक्षियों की ध्वनियों के साथ संबंध बताया है-

षड्जं मयूरो वदति चातको ऋषभं तथा (?)।

अजो विरौति गांधारं क्रौंचः क्वणति मध्यमम्।।13।।

पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पंचमम्

अश्वश्च धैवतं चैव निषादं च गजस्तथा।।14।।[198]

विभिन्न सप्त स्वरों का वर्ण (रंग) का वर्णन इस प्रकार है-

षड्ज कमलवर्णः स्यादृषभः पिंजरस्तथा।

गांधारः स्वर्णवर्ण स्यान्मध्यमः कुंदवर्णकः।।31।।

पंचमः सितवर्णः स्याद्धैवत पीतवर्णकः।

नैषादः कर्बुरो वर्णः सप्तवर्णा निरूपिताः।।32।।[199]

---

[197] संगीत मकरंद - संपादक - लक्ष्मीनारायण गर्ग - पृ. 6

[198] वही - पृ. 6

[199] वही - पृ. 7

रागों में प्रयुक्त होने वाले वादी-संवादी-विवादी तथा अनुवादी स्वरों को क्रमशः राजा- मंत्री-बैरी व सेवक की संज्ञा बताई गई है-

वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मंत्री संवादीरूच्यते।

स्वरो विवादी वैरी स्यादनुबादी च भृत्यवत्।।27।।[200]

संगीत मकरंद में तीन ग्राम का उल्लेख स्पष्ट है- षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम व गांधारग्राम। गांधार ग्राम को स्वर्गलोक स्थित बतलाया गया हैं- *स्वर्गलोकेऽपि गांधारः प्रसिद्धो न महीतले।।50।।*[201] नारद ने गांधार ग्राम का भी उल्लेख किया है और इसके सात मूर्च्छनाओं का नाम भी बताया है।[202]

अन्य विद्वानों की भांति इस ग्रंथ में श्रुतियों की संख्या 22 बतलाई गई है परन्तु श्रुतियों के नाम सिद्ध, प्रभावती, कांता, सुप्रभा, इत्यादि अन्य विद्वानों से भिन्न हैं। श्लोक संख्या- 78-83 तक में 22 श्रुतियों के नाम वर्णित है।[203] स्वर स्थित श्रुतियों की संख्या अन्य विद्वानों की भांति चतुश्चतुश्चतुश्चैव...ही है।

संगीत मकरंद के तीसरे पाद में स्वर की परिभाषा इस प्रकार मिलती है-

श्रुत्यनंतरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।

स्वरो रंजयति श्रोतृचित्त स स्वर उच्यते।।1।।[204]

संगीत मकरंद के पृ. - 15 पर श्लोक संख्या-10-12 में देवगांधार, ध्नासी, सैंधवी इत्यादि रागों का गायन समय प्रातः काल बताया गया है। श्लोक संख्या-13-14 में दोपहर में गाये जाने वाले रागों का नाम वर्णित। श्लोक संख्या 15-19 में सायं कालीन गेय रागों का नाम वर्णित है।

पुलिंग राग, स्त्रीराग व नपुंसक रागों का वर्णन-संगीत मकरंद के 'संगीत

---

[200] वही - पृ. 7

[201] वही - पृ. 8

[202] वही - पृ. 9

[203] वही - पृ. 10

[204] वही - पृ. 14

अध्याय तीसरे पाद' के अन्तर्गत श्लोक-' 53 से 92 में मिलते हैं।[205] नारद ने 'रागिनी' शब्द का प्रयोग न करके स्त्री राग का प्रयोग किया है जो कालान्तर में 'रागिनी' संज्ञा से प्रचलित हो गया।[206]

संगीत मकरंद के चतुर्थ पाद के अन्तर्गत मृदंग का लक्षण, वीणाभेद अवनद्धवाद्य विशेष, नादोपत्ति, नाद के भेद, वाग्येयकारादिगायकभेद लक्षण, गीत गुण-दोष विवेक, आलाप, रागों के शुद्ध संकीर्ण भेद, राग संख्या निर्देश आदि का श्लोक- 1-59 में वर्णित है।

'नृत्याध्याय के अन्तर्गत इसमें नाट्यशाला, सभा, विद्वान, कवि गायक परिहास, इतिहास, ज्योतिष, वैद्यक, पौराणिक, सभापति, नट, घर्घरि पात्र आदि के लक्षण बताए गए हैं। इसमें अधिकांश लक्षण एक-एक श्लोक में है। अन्त में पुष्पाञ्जलि के तीन श्लोक देकर, इस पद को 54 श्लोकों में समाप्त किया है। इसी पाद में पांच तालों की उत्पत्ति का निरूपण भी किया गया है। नृत्याध्याय के द्वितीय पाद में एकोत्तरशत तालों के नाम हैं तथा लघु, गुरु, प्लुत के आधार पर उन तालों के लक्षण हैं। इस पाद के अन्तर्गत कुल 74 श्लोक हैं।[207]

नृत्याध्याय के तृतीय पाद में 10 प्रकार के ताल-प्रबन्धों का वर्णन लघु, सूलादिताल और अंग ताल, ताल शब्द की निष्पत्ति काल, मार्ग और मात्रा का लक्षण देशी तथा मार्गी क्रियाओं के नाम अंग, ग्रह, लय (इसी के अन्तर्गत यति भी दी गई है।) जाति प्रस्तार को समझाया गया है।[208] इस पाद में ताल की निष्पत्ति इस प्रकार दी गई है-

ताल शब्दस्य निष्पत्ति प्रतिष्ठार्थेन धातुना।

गीतं वाद्यं च नृत्यं च भांति ताले प्रतिष्ठितम्।।48।।[209]

---

[205] वही - पृ. 17-20

[206] भारतीय संगीत का इतिहास - डॉ. जोगिन्दर सिंह बावरा - पृ. 22

[207] संगीत ग्रंथ सार - भागवत शरण शर्मा - पृ. 114

[208] वही - पृ. 114

[209] संगीत मकरंद - संपादक - लक्ष्मीनारायण गर्ग - पृ. 32,

ताल के दस प्राणों का वर्णन निम्न श्लोक में किया गया है-

कालमार्गक्रियांगानि गृहजातिकलालयाः।

यतिप्रस्तारकं चैव तालप्राणा दश स्मृताः।।5।।[210]

नृत्याध्याय का अन्तिम पाद चतुर्थ पाद है। इसमें 43 श्लोक है। इससे मृदंगोत्पत्ति के लक्षण बताए गए हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में 506 श्लोक हैं।

नारद

'संगीत मकरंद' के रचयिता नारद हैं। इन्होंने इस ग्रंथ में सांगीतिक विभिन्न तत्वों का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया है। नारद ने सर्वप्रथम रागों के पुरुष, स्त्री व नपुंसक भेद 'संगीत मकरंद' में उल्लेख किया है। 22 श्रुतियों के नाम अन्य शास्त्रकारों से भी भिन्न बतलाया है।

संगीत मकरंद के रचनाकार नारद के बारे में विद्वानों में विभिन्न मतभेद पाया जाता है। श्री भगवत शरण शर्मा के अनुसार 'यह ग्रंथ नारद नामक किसी व्यक्ति की रचना है। संगीत साहित्य में नारद नामक व्यक्ति की तीन कृतियों 'नारदीय शिक्षा', 'रागनिरूपण' और 'पंचमसार संहिता' का उल्लेख मिलता है। इस आधार पर यह ग्रंथ 'संगीत मकरंद' नारद का प्रतीत नहीं होता।'[211]

यह ग्रंथ नारदीय शिक्षा के पश्चात् आठवीं शताब्दी में लिखित महत्वपूर्ण ग्रंथ 'संगीत मकरंद' संगीत के संस्कृत-ग्रंथों में एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, परन्तु इस नारद के जीवन काल और समय के विषय में ठीक-ठीक कुछ पता नहीं लगता। संगीत-साहित्य में प्रायः नारद नामक लेखक की तीन कृतियों 'नारदीय शिक्षा', राग-निरूपण', और 'पंचम सार संहिता' का उल्लेख मिलता है। इनमें से 'नारदीय-शिक्षा' नामक ग्रंथ अधिक प्राचीन है, क्योंकि उसमें वैदिक संगीत का प्रतिपादन किया गया है और 'संगीत मकरंद' ग्रंथ प्राचीन का नहीं ज्ञात होता क्योंकि इसमें वैदिक संगीत की चर्चा नहीं मिलती।'[212]

---

[210] वही - पृ. 32

[211] संगीत ग्रंथ सार - भगवत शरण शर्मा - पृ. 113

[212] संगीत मकरंद - संपादक - लक्ष्मीनारायण गर्ग - (आमुख से लिया गया है)